

## भूमिका



वाचकचन्द्र ! वेदमतमार्त्तण्ड को पौराणिक घटा ने ऐषा दयाया है कि संसार में घोर रात्रि, प्रतीत होती है । यद्यपि श्री स्वामी शङ्कराचार्य आदि महापुरुषों ने कठिन प्रयत्न से वेदभगवान् भास्कर के अग्रशिक्षितगुण गया सुभा दिये थे, तथापि अधिकतर पौराणिक पोल न खोलने के कारण शङ्कर स्वामी के मत की ग्रंथ करने में पौराणिक कृतकृत्य होगये । चाहे उन्होंने ने शङ्कर को शङ्करावतार भी कहकर विश्व में विशेष प्रतिष्ठा बढ़ा दी है, परन्तु सिद्धान्त हानि अवश्य हुई । क्योंकि—

### शक्तैः पशुपतैरपि क्षपणकैः

इत्यादि प्रमाणों से प्रमाणित है कि स्वामी शङ्कराचार्य सम्प्रदायों का खण्डन कर चुके हैं । अस्तु— जब से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पौराणिकमत खण्डन कर वेदधर्म को पुनरुज्जीवित किया है तब से पौराणिक भाई अकुला लठे हैं । अब जब तक १८ हों पुराणों का खण्डन न कर दिया जावे तब तक वेदभगवान् की किरणोका प्रकाश व्याप्त न होगा । पुराणोंका खण्डन सबसे पूर्व भागवत से आरम्भ हुवा है क्योंकि इसदेश में भागवतका ही प्रचार अधिक है “विद्यावतां भागवते परीक्षा” यह वाक्यभी प्रसिद्ध है ॥

भागवत का मूल परीक्षित राजा से आरम्भ है । मेरा स्थान भी यहाँ परीक्षितगढ़ ही है इसलिये मेरा किया खण्डन अच्छा हो जायेगा ॥

कुहनिलाल स्वामी ।  
स्वामी प्रेस मेरठ

# अथ भागवतसमीक्षा ( तृतीयस्कन्ध )

द्वितीयस्कन्ध की समीक्षा के प्रथम ही हम एक बात और भी विचित्र ज्ञात कराते हैं कि आज हमने भागवत की भाषाटीका ( जो भारतधर्म भद्रामण्डल द्वारा पदकप्राम, महानहोपदेशक, पं० उवालाप्रसाद जी की शोधित है ) देखी; जिस के आरम्भ में ही लिखा है कि:-

पहिले ब्रह्मा भगवान् का सम्वाद संक्षेप से कहे हैं फिर शेष जी की कही भागवत सुन्दर विस्तार से कहे हैं ॥ दो प्रकार से भागवत सम्प्रदाय की प्रवृत्ति है, एक तो संक्षेप से श्रीनारायण ब्रह्मा के द्वारा और विस्तार से शेष, अनन्तकुमार, सांख्यायन आदि द्वारा भई, तहां द्वितीयस्कन्ध में श्रीनारायण ब्रह्मा के सम्वाद से संक्षेप से "अहमेवासुमेवाग्रे" इत्यादि का संक्षेप से कही भागवत कही । योही ब्रह्मा नारद के संवाद में दश लक्षण से कुछ विस्तार से कही, मोही शेष जी की कही, अथ अतिविस्तार से कहे वेदो द्वितीयस्कन्ध आदि को आरम्भ है; तहां तृतीय में पहले विदुर मैत्रेय को संक्षेप हुआ । इत्यादि ॥

१-भागवत ब्रह्मा और नारायण, २-ब्रह्मा और नारद, ३-शेष जी की । इन में शुक्र परीक्षित संवाद की १ भी नहीं । न व्यास जी की भागवत का नाम निशान है ॥

इस तृतीयस्कन्ध में एक अद्भुत बात है कि द्वितीय के अन्त में ती शौनके ने मृत से अप्रासंगिक प्रश्न किए कि विदुर का तीर्थयात्रा करते २ मैत्रेय से क्या संवाद हुआ ? मृत जी ने कहा कि परीक्षित के बूझने पर जो शुक्रदेवजी ने राजा परीक्षित को उत्तर दिया वही उभर हम तुम को सुनाते हैं ॥

अथ तृतीयस्कन्ध में "शुक्र उवाच" प्रथम ही है । शुक्रदेव कहते हैं कि-

एवमेष पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान् किल ।

क्षत्रा धनं प्रथिष्टेन त्यक्तवा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥

अर्थात् हेराजन् । इसी प्रकार पर त्याग, स्वगृह, विदुर ने मैत्रेय से कहा था ॥

समीक्षा-अभी राजा का कोई प्रश्न ही नहीं, फिर इसी प्रकार पूछा था, बात किसी असङ्गत है । आगे-राशोवाच-

कुत्र क्षन्तुमश्वता मैत्रेयेणाऽऽस संगमः ।

कथा वा सह संवाद एतदुर्णय नः प्रभो ! ॥ ३ ॥

अर्थात् विदुर मैत्रेय का संवाद कब कहां हुआ है ? यह हम से वर्णन कीजिये । यह प्रश्न पीछे, उत्तर पहले, कैसे बन सकता है ॥

तु० स्क० अ० १ के ४५ वें श्लोक में बहुत कथा है ॥

अजस्रश्च जन्मोत्पथनाशनाय कर्माख्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ।  
मन्थान्यथा कोऽर्हति देहयोगं परोगुणान्वाप्तुं कर्मतन्त्रम् ४४

अर्थ-अजस्रता का जन्म पापी पुरुषों के नाशार्थ और प्रकर्मों जागदीश के कर्मों का प्रयत्न के ग्रहण करने के लिये होते हैं ॥ क्योंकि जब कर्मरहित जीव ही मोक्ष पाकर जन्म तरण से रहित हो जाता है तब निर्गुण स्वयंपरमात्मा के शरीर बन्धन में आना असम्भव है ॥

विभीक्षा-यहां अजन्मा आन ही नहीं हो सकेगा, यदि जन्म लेगा, और सब को अकर्मों कभी नहीं कह सकते जो मानुष कर्म करेगा तथा कृष्णचरित्रों ( जो दशम में लिखे हैं ) को तीभागवती लोग सम्म सभा में स्वपुरुषों के ग्रहणीय नहीं बतावेंगे क्योंकि नृत्य करणा और एकपुत्रकी १६००० रासी होना कौन स्वीकृत करेगा तथा यह बात भी बहुत ही स्पष्ट है कि जब भिक्षित से बहुत जीव की मुक्ति से पुनरावृत्ति पौराणिक नहीं मानते, फिर स्वभाव से मुक्त जागदीश का जन्म कब सम्भव है । आगे अ० २ में श्री कृष्ण के मृत्यु खनावार की रोकर बहुत कहते हैं कि-

दुर्भगो वल लोकोयं यद्वैवा नितरासपि ।

ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इमेऽहोपम् ॥ ८ ॥

बहुव जी विदुर से कहते हैं कि यह लोक ( दुनिया ) भाग्यहीन है और घादव (श्रीकृष्ण के कुल वाडे) बिलकुल ही भाग्यहीन हैं क्योंकि जो पाख बसते-पुत्रि भी श्रीकृष्ण को नहीं जान सके कि यह ब्रह्म है, जैसे चन्द्रना को मछली नहीं आगती ॥

इस पर श्रीधरी टीका कहती है कि:-

ननु शोचन्नाह दुर्भगो भाग्यहीनः । ये सह वसन्तोपि श्री  
हरिरयमितिन विदुः यथा क्षीरसमुद्रं ज्ञातमुद्रुप तदा तत्रत्या  
मीनाः केवलं कमनीयः कश्चिज्जलधर इत्येवं विदुः नरभू-  
तमय इति, तद्वत् । यदा जले प्रातिविम्बित चन्द्रं यथेति ॥

सर्पाय सहस्रशो सीयते हुवे प्रवृत्ते हैं कि जैसे जल के ही वासी नील ( मछली ) और समुद्र में जन्म पाये जन्मा को यही जानते रहे कि यह कोई सुन्दर जलजीव है, अस्तमय न आया इसी प्रकार लोक और यदुबों में श्रीकृष्ण की साधकीशक्ति करते हुवे भी जल न जाना ॥

एस से तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण के जीवन समय में इनकी कोई अवतार नहीं आगता था । लोक १४ में रासलौला और गोपियों की भक्ति दर्शाई है । और आगे—

दृष्ट्वा भवद्विर्ननु राजसूये चैदस्य कृष्णं द्विषतोपि विद्विः ॥  
पां योगिनः संस्पृहयन्ति सक्ययोगेन कस्तद्विग्रहं सहितं ॥१६॥

उद्दण्डी कहते हैं कि हे विदुर । आप लोगों ने राजसूय में देखा कि शिशुपाय ने श्रीकृष्ण महाराज को कितने अपसक्त कहे परन्तु हेय से भी जो गति शिशुपाल ने पाई उस गति के लिये योगी जन योग मार्ग से भी तरस्ते हैं । उस कृष्ण के विरह को कौन सह सकेगा ॥

नसीला—हम नहीं जानते कि जहाँ यह बताया जात है कि अत्युच पापियों के वधार्थ अवतार होते हैं, वहाँ यह कैसे सम्भव है कि उन पापियों को मोक्ष प्राप्त होता है । कृतिपाप का प्रायश्चित्त अनेकानु के हाथ से साने मात्र से होना कौन सी फिलासफी है । आगे २०वें श्लोक में केवल कृष्ण के ही नहीं अर्जुन के मारे लोगों की भी मुक्ति बताया है । श्लोक २३ में पूतना, जो स्नान में जहर लगाय दूध पिलाने आई, उस को सात सत्रोदा के समान गति दी । दौड़ कपूर कपास सब एक ही भाव हुआ ।

ततो नन्दब्रजमितः पित्रा कंशाद्वि विभ्यता ।

एकादश समाश्लत्र गढार्चिः सबलोऽब्रसत् ॥२६॥

कंस के मय से पित्ताने नन्द के ब्रज में पहुंचाये ११ वर्ष वहाँ ही गुप्त ही रहे ॥

नसीला—जब कि इसी अध्याय में पूतना का, कार्तियेय का और बकासुर का वध, गोसहन उठाना और अनेक चरित्रों का वर्णन है, तब बाललीला में गुप्त बताया गया है कि १ बाललीला ही नहीं तो क्या है ॥

परच्छाशिकरैर्मृ पृथगानयन् रजनीमुखम् ।

नायत्कलप्रदं रमे खोणा भवद्वलमपुडन ॥ ३४ ॥

शरह के चन्द्रसा को रात्रिमुख ही जान खियों को गण्डल के शोभित करने वाले कलपद गाते रसना करते थे ॥ ३४ ॥

भला यह कोई प्रशंसित बात है क्या ?

अध्याय ३ में—

सांदीपने सकृत् प्रोक्त ब्रह्माधीत्य सत्रिस्तरम् ।

तरुमै प्रादाद्दुःसं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥ २ ॥

उद्धव भी कहते हैं कि सांदीपन ऋषि से एक बार ही खनकर समस्त वेद पढ़ा और उसका मरा हुआ पुत्र पञ्चजन के पेट से ला दिया । यह पुरानी किरानियों से बड़ गये, सुर्दाँ को जिलाना ही नहीं है, बल्कि पेट में से ले आये जहां आहार का रस रक्त बनता है । श्लोक ३ में रुक्मिणी-हरण की भी प्रशंसा की है । यहां गांधर्वविवाह बताया है परन्तु वह राजस विवाह हुआ है, क्योंकि मार खीन करे ती गांधर्वविवाह नहीं कहाता इसलिये आनेनामिजिती से स्वयंवर और सत्यभामा से विवाह लिखा है ।

और आगे ६ । ७ में भीनासुर के रणवास में से अनेक राजकन्याओं के श्रीकृष्ण का विवाह वर्णित है ॥

आसां मुहूर्त्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् ।

सविधं जगृहे पाणीनलरूपः स्वमाद्यथा ॥ ८ ॥

तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुत्यानि सर्वतः ।

एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥

अर्थात् सब का एक मुहूर्त्तमात्र में सामीप्य में पाणिग्रहण किया । एक २ में दश २ पुत्र आप जैसे उत्पन्न किये । भला एक कृष्ण यदि अवतार थे ती सब खियों में १० । १० निजतुल्यपुत्र होने पर अतः कृष्ण भूमण्डल में हो जाने चाहिये थे, फिर कृष्णभक्ति कैसी ? श्लोक १५ में कहा है कि बीठी मद्य ( शराब ) के मद से लाल लोचन हो विवाद कर परस्पर लड़ कर यादव नरोंने । श्लो ४ में फिर कहा है—

अथ ते लदनुज्ञाना भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ।

तथा विभ्रान्तानां तुहस्तैर्मम परपुत्रुः ॥ १ ॥

अर्थात् यादव वातुली शराब पीकर बे होश हो गये, लड़ मरे।

समीक्षा-भला श्रीकृष्ण से महात्मा मद्य पीने का ज्ञान होते भी कुल रक्षार्थ सब को निवारण का उद्योग न कर सकें, यह कब सम्भव है ? फिर यहाँ तो कृष्ण की आज्ञा से मद्य पीना फहा है । इस समय में तो यादवों का हीनत्वकी यज्ञ भी न था । फिर भी मद्यपान का निषेध नहीं किया गया । इस से स्पष्ट है कि इस कथा के कर्ता मद्यपान को पाप नहीं समझते थे । इस पर भी पीछे अ० ३ श्लोक १९ में—

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपद्यानुगः ।

कामान्सिषेवे द्वावत्यामसक्तः सुख्यमास्थितः ॥१६॥

इसमें श्रीकृष्ण को लोक वेद पद्यगानी बताया है, फिर भी मद्यपान का उपदेश निज कुल को क्यों किया ? और भीमाशुर की कन्या का स्त्री भाव से रखना वसव से भोगविलास करना भी यहीं वर्णित है, यह वेद मार्ग कहाँ गया ? अ० ५ में स्पष्ट कहा है कि विदुर जी 'ध्यासवीर्य' से हुवे हैं ॥

नैतच्चित्रं त्वयि ह्यत्तर्वादरायणिधीर्धजे ॥

अर्थात् मेरेय जी विदुर से कहते हैं कि आप ध्यासवीर्य से (भुविष्या दासी में ) उत्पन्न हुवे हो । आगे ब्रह्मा, विष्णु, शिव की वैकारिक तत्वात्मक लिला है ॥ श्लो० २३ से सृष्टि की उत्पत्ति लिखी है ॥ यथा—

भगवानेक आसेदमय आत्माऽऽत्मनां विभुः ।

आत्मेच्छानुगतो वात्मा नानामत्युपलक्षणः ॥२३॥

सत्त्वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्द्रष्टयमेकराट् ।

मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥ २४ ॥

तथा च—

कामवृत्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ।

पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाघत्त वीर्यवान् ॥ २६ ॥

इस पर टीका यह कहती है कि तासमय-ये सर्वदृष्टा ईश्वर सम्पूर्ण शक्ति से प्रकाशित होने पर भी इस वैभव को कोड़े देखने द्वारा न होने से और मायादिक शक्ति छीन होने से अग्रने को शक्यता मानते भये कि हम हैं तो सही पर कुछ नहीं हैं ॥२६॥ है महाभाग । तब सर्वदृष्टा या ईश्वर को

कार्यकारण रूद्रिणी से माया ताक्री महाशक्ति अनुधन्यामरूपा उत्पन्न होती  
 भई, जिसे स्वयं ईश्वर तब को रचते भये ॥२१॥ गुणजयी काल की शक्ति से  
 माया में पुरुषरूप करके वीर्ययन् धीर्य को धारण करते भये ॥ २२॥ काल-  
 प्रेरित अव्यक्त माया से महत्तत्त्व भयो, तमोगुण को नाशक विज्ञान आत्मा  
 जीव को देह में स्थित होकर विद्य को प्रकाशित करती भयो । २३॥ सौ जीव  
 अंश गुण काल आत्मा भगवत् की वृष्टि के खानने या विश्द की रचये की  
 इच्छा करके जीवात्मा अपने आत्मा को रूपांतर करते भये ॥२४॥ मह-  
 त्त्व जब विकार को प्राप्त भयो, तब अहं तरव भयो । कार्य कारण कर्ता  
 जीव पञ्चभूत इन्द्रिय मनोभय होती भयो ॥२५॥ वह अहंकार वैकारिक  
 तैत्ति तान्त्रिक संदये तीन प्रकार का भयो, अहंकार विकार को प्राप्त भयो  
 तब वैकारिक अहंकार से जन भयो ॥२६॥ वैकारिक जो देवता भये उस से  
 शब्दादिक गुण प्रकाशक होय हैं, रवाःखरवतमोनय ब्रह्मा विष्णु शिव हैं (३१)

समीक्षा—यहां सृष्टि का किस प्रकार वर्णन किया है, जिससे श्लोक २५  
 में ईश्वरसे मायाशक्ति की उत्पत्ति लिखी है । यह वातावादात्म से हवा के  
 पैदा होने की बात से मिलती है, इसी भाक्तमत से यदनों के कुरान में  
 यह शिखा गई होगी ॥

फिर श्लोक ३१ में तरवमय ब्रह्मा विष्णु शिव को अताजा और कहीं  
 इन को वावात लगदीश बताना भी चिन्त्य है । यहाँ नामि कमल, जल  
 सभी सूख गये जान पड़ते हैं ॥ आने श्लोक ३४ में—

अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुचलान्वितः ।

ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥३४॥

इत्यादि श्लोकों में “आकाशाद्वायुः वयोरग्निरनेरापः” इत्यादि अर्थका  
 वर्णन है । फिर—

एते देवाः कला शिष्णोः कालमायांशयोगतः ।

नानात्वारस्त्रक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ॥३५॥

अर्थात् इतने देवता ये जो पूर्व वर्णित हैं, विष्णु की कला हैं । इन का  
 सामर्थ्य नाना होने से सृष्टि रचने का न हुआ, तब हायजोड़ स्तुति करने  
 लगे । भला आकाशके हाथ कहां से आये ? अज्ञ से ब्रह्मा विष्णु शिव को  
 वावात भगवान् नहीं कहना चाहिए ॥

अ० ८ में शुकदेव जी कहते हैं कि वीरप ने कहा कि—

प्रवर्त्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद् भगवान् नृपिभ्यः ।

अर्थात् यह भागवत कहता हूँ जो मालात शेष भगवान् ने ऋषियों से कहा था । सनत्कुमार पत्यलोक से गङ्गा जी में बहते १ क्षीणे हुवे पाताल में पहुँचे थे ( अ० ८ । ५ )

एक समय शेष जी ने सनत्कुमारों से भागवत कही थी वही भागवत "नांश्यायन" जुमि को सनत्कुमारों ने सुनाई । सांख्यायन ने पराशर और सुहरति हमारे गुरुओंको सुनाई, गुरुजी ने मुझे सुनाई मैं आपको सुनाता हूँ।

यहाँ भाषाटीका में लिखा है कि पिता को राजा द्वारा भक्ति हुन, पराशर जी राजा का बध कर यज्ञ में मद्धत हुये, तब वशिष्ठ जी ने रोके धीरे पुष्टत्य ने अपनी सन्तति की रक्षा की, प्रवृत्तता में पराशर को बर दिया कि तुम पुराणवक्ता होंगे ॥

समीक्षा—यह गई भागवत है, अथ तक तो पराशर के पुत्र व्यास जी पुराणकर्ता थे, परन्तु उनके पुत्रमोक्ष इव बधन में पराशर जी पुराणों के वक्ता हो गये ॥

इन से प्राये अ० ८ में विष्णु को नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति है । ब्रह्मा को गोल हुआ कि मैं कहीं से आया, क्या करूँ, तब चार मुख बाढे ब्रह्मा कनक की उपड़ी की नाल में को नीचे चूसे, यह (१९) श्लोक में बताया है । शेष शब्दा के रूप की गोमा भी खूब ही पचानी है । अ० ९ में ब्रह्मा ने कहा "प्रातोचि मेद्यं अर्थात् 'आज मैंने जाना' । सबसे स्पष्ट है कि अब तक नहीं जाना था । यह नाभिकमल का डकीखला न जाने कहां से आ गया जब कि पढ़िखे मृष्टि का वर्णन तो कर ही चुके हैं ॥

अ० १० में दशविधर्षण का वर्णन है । अिन्न से पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, मृग, व्रेत, पिशाच, गुह्यरुच्य की उत्पत्ति वर्णित है । अ० ११ में परमाणु आदि द्विपरार्थपर्यन्त तथा कल्प का वर्णन है । आगे अ० १२ में नन्दवन्तर का वर्णन है, उस में प्रथम ही अश्वत्थामिन्न, तामिन्न, महानोह, मोह, तामसी रचना की । तब—

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नारमानं सहस्रान्यत ।

भगवद्दृष्ट्वात्पूतेन मनसान्यां ततो सृजत् ॥ ३ ॥



पापी सृष्टि को देख ब्रह्मा दुःखी हुवे, फिर रचना की, तब सनकादि ४ मुनि रचे, यह ब्रह्म वारी हो गये, इन से ब्रह्मा ने सृष्टि रचनार्थ कहा, यह न जाने, तब ब्रह्मा को कोप भया इससे 'रुद्र' हुवे ॥

रुद्र की रची सृष्टि सब ओर से अगत को खाने लगी, सहस्रों यूथ खाये इन ब्रह्मा को शक्का हुई, कहा कि "बस करो, रहने दो, तप करो" ॥

समीक्षा-न जाने सहस्रों यूथ बिना ही रचों को कैसे मनोमोदकवत् खागये? केवल ४ सनकादि ही तो उत्पन्न हुवे थे, उनमें से एक भी नहीं खाया लिखा। क्या यह रुद्रगुण परस्पर खाते थे, यह कोई अन्य ब्रह्मा रच रहा था ?

रुद्र तपोर्थे गये तब ब्रह्मा ने १७ पुत्र रचे, मरीच्यादि नाम के इस प्रकार से हुवे-"उत्संग" घोंटे से नारद । अंगूठे से दक्ष । प्राण से वशिष्ठ । त्वचा से अंगु । हाथ से क्रतु । नाभि से पुत्रह । कानों से पुत्रात्प्य । मुख से अंगिरा । नेत्रों से अग्नि, मन से मरीचि । दाहिने स्तन से धर्म । पीठ से अधर्म । अधर्म से मृत्यु । हृदय से काम । भों से क्रीध । अधर ओष्ठ से लोभ । मुख से वाणी । लिङ्ग से ससुद्र । गुदा से पापाश्रय मृत्यु हुवा । खाया से "कर्हम=देवहूति का पति" हुवा ॥

वाचं दुहितरं तन्त्रीं स्वयंभूर्हरतीं मनः ॥

अकामां अकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२७॥

अर्थात् वाणी रूप बेटी ने ब्रह्मा का मन हर लिया । अकाम वाणी से ब्रह्मा सकाम हुवा, ऐसा सुना है ॥ २७ ॥

तमधर्मं कृत्वा मतिं त्रिलोक्य पितरं सुताः ।

मरीचिमख्यामुनयो विश्रम्भात्प्रत्य बोधयन् ॥ २८ ॥

नैतरपूर्वैः कृतं तत्रैव न करिष्यन्ति चापरे ।

अथं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥ २९ ९

तेजीयसामपि ह्येतन्न सुरलोक्यं जगद्गुरो ।

यद्भवत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥ ३० ॥

अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदिने पिताको सकाम जान रोका कि—  
 “ऐसा काम न किसी ने किया, न आगे कोई करेगा, जैसा कि आप पुत्री  
 जन्म ( पाप ) करते हैं । तेजस्वियों को भी ऐसा नहीं चाहिये क्योंकि  
 वे जैसा करते हैं, दुनियां भी वैसा ही कर सुख पाती है” । इस पर ब्रह्मा जी  
 शर्मा गये और शरीर त्याग दिया, वह शरीर नीहार ( कुहरा ) संसार में  
 अब भी वर्तमान है । इस पर भामा टीका ने ती टिप्पणी लगाई है कि  
 “ यह अलंकार है । यहां सरस्वती रूप विद्या जाननी ” ॥

इस भी इस को अलंकार ही मानते हैं परन्तु श्रीधरी आदि टीका-  
 कारोंने यहां कुछ भी न कहा, यह आश्चर्य है । ऐसे अलंकारादि यदि भागवत  
 में न होते तो क्या हानि थी और अलंकार है तो शरीर त्यागना, शर्म  
 दिलानी, यह सब क्यों कल्पना करके प्रजा का मन विगाड़ा ? ब्रह्मा के शरीर  
 से लोभ मोहादि को भी उत्पत्ति लिखी है, क्या उन के भी कोई शरीर है ?  
 इस यह सब कल्पना शास्त्र से अट्टा हटाने की हैं । कहीं पापी सृष्टि को  
 देख ब्रह्मा को दुःख होना, यह सब इल्लील कैसे किस्से हैं; वहां भी नाग के  
 खाने से आत्मा पापी होगया है, कहीं आदम हड्वा कीवी कहानी यहां भी  
 भरी गई है ॥

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेद ईश्वरः ।

सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥ ३९ ॥

अर्थात् ब्रह्मा ने ऋग्, यजु, साम, अथर्व । आयुर्वेद, धनुर्वेद, गार्भ्यवेद  
 ( स्थापत्य ), अथर्ववेद चारों पूर्वोदि मुखों से वषासंख्य रचे परन्तु इतिहास  
 पुराण चारों मुखों से रचे । यहां अथर्वि पुराणों का नाम नहीं बताया है,  
 यदि हमारे सनातनी भाई भागवतादि पुराणों का अर्थ करेंगे तो अब पराशर  
 से भी पूर्व ब्रह्मा ही पुराणकर्ता हो गये ॥

यदि एक गद्याह तीन बार तीन प्रकार से पृथक् बयान करे तो दावा  
 श्राज हो जाता है, आज पुराणकर्ता—व्यास, पराशर और ब्रह्मा तीन बता  
 दिये, इस किस को सत्य माने । फिर वृत्त वैशंपायन आदि पृथक् रहे ॥

श्लोक ३९ । ३९ में सनु और शतरूपा की उत्पत्ति ब्रह्मा से बताई है,

तमी से नैधुनीसृष्टि चली है, मनु की ५ सन्तान हुईं, प्रियव्रत और उत्तानपाद २ पुत्र, तथा आकृति, देवहूति और प्रमूति ३ कन्या ॥

अ० १३ में मनु से ब्रह्मा ने कहा—हे राजा मनु! प्रजा को उत्पन्न करो । रक्षा करो, तब मनु ने कहा कि प्रजा को कहां बनाऊँ ? पृथ्वी ठी है ही नहीं । ब्रह्मा ने शोच किया तब ब्रह्मा की नाक में से छोटा सा सूकर का भस्त्रा निकला, देखते-देखते २ अङ्गुष्ठमात्र से हाथी के समान हो गया, मन्वादि चकित होगये । इसके नख रोम खुरादि सभी का वर्णन है, जो पार्थिव होते हैं ॥

स्वदंष्ट्रयोद्घृत्य महीं निमग्नां सउत्थितः संरुच्ये रसायाः ।

तत्रापि दैत्यं गदया पतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥

अर्थात् डूबी हुई धरती को अपने दांत पर रख कर दैत्य से गदायुद्ध लड़े । क्या अच्छी पदार्थविद्या है । यदि दांत आदि बाराह का शरीर पार्थिव था, तो किस पृथिवी पर खड़े हो कर लड़े ॥

श्लोक २९ में "प्राणेन पृथिव्याः पदवीं विक्रमम्" भी लिख चुके हैं, इस से पार्थिव ही माना जा सकता है, क्योंकि पृथिवीत्व से ही गन्ध गुण जाना जा सकता है ॥

चौदहवें अध्याय में हिरण्यक की उत्पत्ति लिखी है कि दक्ष की बेटी दिति मरीचि के पुत्र कश्यप की स्त्री थी, उसने सन्ध्या समय मुनि से वीर्यदान मांगा कि सौतेले सन्तानों से मुझे दुःख है । भर्ता ने समझाई भी तो भी दिति ने वैश्य समान लज्जा त्याग पूजन करते मुनि की धोती खोल दी, भार्य जान मुनि ने.....किया, स्नान कर पुनः जप करने लगे, दिति ने शिव और पति की स्तुति की, तब पति ने कहा तेरा पोता भक्त होगा ॥

अ० १५ में दिति ने सौ वर्ष गर्भधारण किया, संसार में अन्धकार छा गया देवगण घबरोकर ब्रह्मा की स्तुति करने लगे, कि यह क्या हुआ !!! ब्रह्मा ने कहा—मेरे सनकादि ४ पुत्र वैकुण्ठ गये थे, द्वारपालों ने इन्हें १ वीं डीढ़ी पर बेल लगा के रोक दिया तब सनकादि को क्रोध आया, शाप दिया कि तुम दोनों इस पद के अधिकारी नहीं हो । हाथ जोड़ पग पकड़, अपराध स्वीकार किया । भगवान् लक्ष्मीसहित इस ( केश ) की बात सुन उठ आये ॥

अ० १६ में भगवान् ने कैवल्य किया कि तुम अक्षरता को प्राप्त होकर फिर यहीं आओगे । इस शाप के बश वही दोनों राक्षस दिति के गर्भ में आये । श्लोक ३० में यह भी विष्णु ने कहा है कि लक्ष्मी ने मुझ से प्रथम ही कहा था कि ब्रह्मण भावने, उन्हें द्वारपाल रोकने ॥

फिर भला इन बेचारों का क्या दीय था ? यहाँ वैकुण्ठ की धनाढ्य भी बहिरात जैसी वर्णित है, न जाने कुरान ने पुराण से या पुराण ने कुरान से यह शब्द सीखे हैं । हमारे स्नातनी भाई मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं मानते पर यह वैकुण्ठ से गिरना क्या है ?

अ० १७ में वर्णन है कि दिति के गर्भ जन्म समय गर्भे बोलने लगे, पत्नी पौंसले छोड़ भागने लगे, खून बरसने लगा, भयङ्कर वायु चला, उत्प्रात हुवे । कश्यप ने उन दोनों पुत्रों के हिरण्यकशिपु हिरण्यवाक्ष नाम धरे । हिरण्यकशिपु ने ३ लोक के लोकपालों को वश में कर लिया । छोटा हिरण्यवाक्ष गदा लेकर स्वर्ग गया, देवगण भाग गये, तब यह वरुणलोक को गया, वहाँ भी देख कर सब भाग गये । वरुण ने कहा—सिवाय ईश्वर के आप से कीन लड़ सकता है, यह पाताल में हैं; इस घात को सुन कर रसातल को गया वहाँ बाराह जी को दांत पर पृथिवी धरे देखा और अ० १८ श्लोक ३ में कहा कि—

आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो रसौरसां विश्वसृजेयमर्पिता ॥

छोड़, पृथिवी हम को ब्रह्मा ने दी है । फिर बाराह जी से मुद्द हुवा ॥

समीक्षा—हम पीराणियों से सुना करते थे कि धरती का वारिया सा लपेट कर राक्षस ले गया था, सी यहाँ नहीं आया, कदाचित्त बाराह पुराण में इस की विशेष कथा हो । यहाँ ती ब्रह्माने दी है, यही लिखा है । अ० १८ में हिरण्यवाक्ष मारा गया है । अ० २० में ब्रह्मा ने सृष्टि रची और—

विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् ।

जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृप्तसमुद्रवाम् ॥१९॥

तमोमय सृष्टि ने अप्रमत्त हो ब्रह्मा ने अपना शरीर त्याग दिया, इस शरीर ने रात्रि चरपन्न हुई, यक्ष राक्षसों ने ग्रहण की । यक्ष राक्षस ब्रह्मा को खाने की संछाह करने लगे । और अद्भुत बात—

देवोदेवाञ्जघनतः सृजतिस्मातिलीलुपान् ।

त एनं लीलुपतया सैथुनायाभिपेदिरे ॥ २३ ॥

ततो हसन्सभगवान्सुरैर्निरपन्नमैः ।

अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धोभीतः परापतत् ॥ २४ ॥

ब्रह्माने जङ्घासे असुर रचे, वे कानी होकर ब्रह्मा से ही नैयुन करने दी है ।  
निर्लज्ज असुरों की चेष्टा देख, ब्रह्मा हंस कर क्रोधित हुवे, भागे भगवान्,  
से कथा की कि—

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनाऽसृजं प्रजाः ।

ताद्गमा यमितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

हे परमात्मन् ! मैंने तो आपको कहने से प्रजा उत्पन्न की, अब ये पापी  
मुझ से नैयुनार्थ पीछे पड़े हैं । प्रभो रक्षा करो ॥

सोवधायर्थास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ।

विमुञ्चात्मतनुं धोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥२८॥

भगवान् इस ब्रह्मा की दीनता जानकर बोले कि हे ब्रह्मा ! अपना यह  
घोर शरीर त्याग दो, तब ब्रह्माने शरीर त्यागा और छम छमाती, उच्चस्तनी,  
खुन्दर, गेंद उछालती स्त्री को देख दैत्य बोले कि तू कौन है ? कहां से आई  
है ? हेरफेर की बातें कर सन्धानाम की स्त्री असुरों ने घेर ली ॥

समीक्षा—क्या यह ब्रह्मा जी का ही रूप था या कौन थी ? कुछ भी  
पता न दिया । श्लोक २८ में ब्रह्मा का शरीर त्यागना, २९ में स्त्री का वर्णन  
शङ्का में डालता है । ब्रह्मा का वार २ शरीर त्यागना भी अद्भुत बात है ।  
एक वार पुत्री सरस्वती के अलङ्कार में, दूसरे इसी अध्याय श्लोक ९० में, फिर  
श्लोक २८ में शरीर त्याग है, परन्तु फिर जन्म कैसे हुआ, यह पता नहीं ।  
चौमुखे ब्रह्मा पुरुष पर उसी के रचेहुवे पुत्र असुर कैसे आसक्त हुवे ? क्या यह  
नेचर के विरुद्ध कुरीति उस समय भी थी ? कदापि नहीं ॥

इस प्रकार की कथा केवल सनातनियों के नीचा दिखाने के अतिरिक्त  
क्या मतलब रखती हैं, हम नहीं जानते कि ऐसी २ भद्दी रद्दी बातों के  
पुस्तक को धर्मपुस्तक कैसे कह सकते हैं । इस के घेर बैठने पर ब्रह्मा ने  
अपसरा बनाई, फिर—

विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीम्प्रियाम् ॥ ३९ ॥

फिर शरीर त्यागने । फिर भूत प्रेत पिशाच नंगे रहने वाले रचे निद्रा  
सन्नाद रचे, आलस्य रंचा, फिर पितर रचे, जिन का श्राद्ध होता है, सिद्ध  
विद्याधर किन्नर जो ब्रह्मा के त्यागे तनु ये, वह उन्हीं ने पाये । क्या यह तनु  
रूपड़े की पोशाक का तो नाम नहीं घरा है ?

फिर सर्पादि सृजे ह्ये, फिर ऋषि रचे । श्लोक ४८ में फिर शरीर त्यागा है ।  
ब्रह्मा के मुदां धारो से सर्प हुवे, तब ब्रह्मा प्रसन्न हुवे और मनु सृजे ॥

पाठको । यदि हम इस प्रकार भी अध्याय चार वर्णन करेंगे तो पुस्तक  
बहुत बढ़जावेगी, इसलिये आगे संक्षेपसे किसी-२ कथा का वर्णन ही करेंगे ।

अ० २१ में मनु की पुत्री देवहूति में कर्दम से कीने सन्तान हुई ? इत्यादि  
प्रश्न हैं । तब कर्दम के तप का वर्णन और भगवद्दर्शन की कथा में भगवान् को  
गरुड पर सवार बताया है । श्लोक ३४ अ० २२ में—

मनु ने स्वकन्या कर्दम से विवाहने की प्रार्थना की तो कर्दम ऊटपटांग  
कहते हैं कि इस से अशुभ विवाह करेंगे ? कारी है और जब यह अपने  
महल पर रोन्द खेलती थी, तब विश्वावसु इस के रूप को देख विमान से  
गिर पड़ा था ॥

समीक्षा—याह री सम्भयता । जैसे आजकल असभ्य संगीत गीत गाते हैं  
कि ( कितने तेने घायल कीने, कितने लोट पोट ) इत्यादि ॥

अभी गरुड पक्षी फटू विनता से उत्पन्न हुवे ही नहीं थे, भगवान्  
पहले ही कहां से बढ़ बैठे ॥

अ० २२ श्लोक २८ । ३१ में लिखा है कि वाराह अवतार ने जहां  
शरीर कम्पाया था, उन के भई रोंगटों से कुशा हुईं इसी लिये यज्ञ रक्षार्थ  
काम में जाती हैं । श्लोक ३४ में इस कथा के अर्थ से कलियुग में उद्धार  
कहा है । अ० २३ में देवहूति को कर्दम ने सारा भूलोक विमान में बैठाया,  
दिखाय ८ कन्या उत्पन्न कर फिर १०० वर्ष भोग किया, जो क्षणमात्र प्रतीत  
हुवा । अ० २४ में कर्दम ने कपिलावतार बताया है, वहां जब गर्भ में—

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः ।

कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणिः ॥ ३ ॥

अवादर्यस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घना घनाः ।

अर्थात् परमेश्वर कर्दम के वीर्य में वास कर देवहूति के गर्भ में आये,  
तब आकाश में बाजे बजे, अप्सरा नाचीं इत्यादि ॥

समीक्षा—गीता में तो कृष्णचन्द्र ने कहा है कि जब २ धर्म की ग्लानि,  
अधर्म की वृद्धि होती है, तभी मेरा अवतार होता है, परन्तु यहां तो धर्मात्मा

प्रजा में ही कपिलदेव आ पहुँचे । माता को उपदेश करने आये, क्या कर्दम कम उपदेशक थे ? फिर गर्भवती से "नाना" ब्रह्मा कहते हैं कि तेरे गर्भ में कैटभासुर का मारक उत्पन्न होगा । देखो श्लोक १८ (इस के विकृत मधुकैटभ का दुर्गापाठ में देवी से वध बताया है ) ब्रह्मा की आज्ञा से कर्दम ने ९ बेटी मरीच्यादि को देदीं, विवाह विधिपूर्वक किया । भला यह कैसी विधि, जो भासाओं के साथ भानजी व्याही जावे ?

भीमसेनादि बहुत से पौराणिक कह देते हैं कि भानसीसृष्टि में यह पाप नहीं है, परन्तु यहाँ तो स्पष्ट मैथुनी प्रजा है, कन्या मैथुन से हुई हैं ॥

अ० २६ श्लोक ११ में २४ तत्त्वों की गणना है, परन्तु प्रथम ३१ तत्त्व बता आये हैं, देखो अ० ६ । २ यहाँ उसके विपरीत २४ हैं । अ० २८ में योगमा-र्गोपदेश है, उसमें भी श्लोक ६ में—

वैकुण्ठलीलाऽभिध्यानं समाधानं तथात्मनः ॥ ६ ॥

अर्थात् एकान्त वासादि कहते २ वैकुण्ठ की लीला का ध्यान करना भी बताया है, सो ठीक नहीं ज्ञात होता, क्योंकि पुराणों ने वैकुण्ठ लीला में ऐश्वर्य का सामान, मद, मोह, मत्सरता, स्त्री, गान, वाद्य, युद्ध, शाप, सोना, जागना आदि सभी सांसारिक भोग लिखा है । फिर घर छोड़ कर वन में भी वही ध्यान बताना उचित नहीं है । श्लोक १४ से विष्णु का ध्यान प्राणायाम में जो बताया है, वह भी सब हारकङ्कणादिधारी शेषविहारी का ही वर्णित है, जो योगशास्त्र के प्रतिकूल है । अ० ३३ में लिखा है कि—

अहो वत श्रपचोऽतीगरीशान् यज्जिह्वाश्रेवस्तृते नाम तुभ्यम् ।  
तेपुरतपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ते ये ॥

जिस की जिह्वा पर तेरा ( परमेश्वर का ) नाम है, वह चण्डाल भी श्रेष्ठ है, उन्हीं ने तप, होम, स्नान, वेदपाठ सब कुछ कर लिया, जिन आर्यों ने तेरा नाम लिया ॥

हे सनातनधर्मियो! यहाँ तो भागवत ही भक्तियों को भी वेदपाठ करा कर आर्य बनाने=शुद्ध करने लगी ?

इति तृतीयस्कन्धसमीक्षा ॥ ३ ॥

॥ ओ३म् ॥

## अथ चतुर्थस्कन्धसमीक्षणम्

( भगे भाई का बहन से विवाह )

प्रथमप्रासे मत्तिकापातः के अनुसार चतुर्थस्कन्ध में सब से पहिले ही एक महाअधर्म की गिना लिखी है । ए० १ श्लोक १-६ तक देखिये ॥

मित्रेयववाच-

मनोऽन्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ।

आकूतिर्देवहूतिश्च प्रभूतिरिति विष्णुताः ॥ १ ॥

आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ।

पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥

प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ।

मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३ ॥

यरतयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ।

या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी ॥ ४ ॥

आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्या पुत्रं विततरोचिषम् ।

स्वार्यंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥ ५ ॥

तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः ।

तुष्टायां तोपमापन्नोऽजनयद्द्विदश्यात्मजान् ॥ ६ ॥

अर्थ-स्वार्थंभुव मनु के तीन कन्या-शतरूपा में उत्पन्न हुईं १-आकूति, २-देवहूति, ३-प्रभूति । आकूति "रुचि" को व्याही, उससे पुत्र पुत्री विष्णु-यज्ञस्वरूप और लक्ष्मी का अंश दक्षिणा नाम की हुई । पुत्र ( यज्ञ ) को उस के नाना मनु ने रख लिया और ( दक्षिणा ) पुत्री पिता ( रुचि ) के घर रही, फिर सहीदर भाई यज्ञ का अपनी बहिन दक्षिणा से विवाह हुवा १२-पुत्र पैदा हुवे ॥

समीक्षा-१-इस से बढ़कर पाप साधारण पुरुष भी नहीं कर सकता फिर ईश्वरावतार जिसे की २५ अवतारों में गिना माना है वह क्यों ऐसे पाप में प्रवृत्त हुवा ? जब कि अवतारों के कर्म लोगों को सिखाने को बताया जाते हैं ॥



## नर नारायण अवतार

## अ० १ श्लोक ४८

दक्ष प्रजापति ने १३ कन्या धर्म का उपाहीं यीं, उन के नाम और सन्तान भी नीचे लिखे जानीं । १ अह्वा से शुभ, २ मैत्री से प्रसाद ३, दया से अभय, ४ शान्ति से सुख, ५ तुष्टि से सुद, ६ पुष्टि से समय, ७ क्रिया से योग, ८ उन्नति से ... ९ बुद्धि से अर्थ, १० मेधा से स्मृति, ११ तितिक्षा से क्षेम, १२ ह्री से प्रज्ञा और १३ मूर्ति से नर नारायण उत्पन्न हुये ॥

इन बारहों के पुत्रों के नाम विचार देखें यह मूर्तिमान् शरीरधारी नहीं हो सके फिर एक तेरहवीं स्त्री से ही नर नारायण अवतार अविक्रम जैसे धताये गये । इन तेरहों पुत्रियों के नाम भी शरीरधारीके से नहीं ज्ञात होते । इन दोनों अवतारों का स्वायंभुव मनु के समकालीन होना सिद्ध है परन्तु आगे श्लोक ५९ में अर्जुन श्रीकृष्ण बताये हैं । यथा:-

तात्रिमौ वै भगवतो हरेशाविहागती ।

भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरुद्वहौ ॥ ५९ ॥

यह तौ इसी गत द्वापरान्त में हुवे हैं । आगे स्वाहा स्त्री से अग्निदेव की सन्तति का वर्णन है । अग्नि के ही सन्तान अग्निष्वात्त वर्हिषद् सोम्य और आज्यपा पितर हुए ॥

समीक्षा-आज कल सनातनी लोग अग्निष्वात्त आदि का अर्थ मरे पितर कहते हैं परन्तु यहां उत्पत्ति ही लिखी है ॥

दूसरे अध्याय में दक्षप्रजापति के यज्ञ का वर्णन है । दक्ष का अर्थ चतुर है और प्रजापति होने से भी उस के ज्ञान मान का अनुमान हो सका है तथापि उस ने अपने जामाता शिव को ( जैसे कि पौराणिक ईश्वर मानते हैं ) बड़ी निन्दा से पुकारा है, नमूने के लिये दो श्लोक लिखते हैं:-

प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ।

अटत्युन्मत्तवन्नग्नौ व्युत्प्रकेशो हसन रुदन् ॥१४॥

चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतसङ्गस्थभूषणः ।

शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तोमत्तजनप्रियः ॥ १५ ॥

अर्थात् शिव प्रेतों में धामों, रोता, एंसना, अनुष्य की हड्डी की भाला धारे अश्रित है । प्रजापति की यह राय है । अध्याय ५ श्लोक ६ में शिव की कृता ने वीरभद्र की उत्पत्ति लिखी है । एषा वालों से वज्रा या जवान पुत्र्य पैदा हो सकता है ? अ० १३ में त्रैत्रेयउवाच-श्लो० २४ से आगे ती या ही पुनः १० से आगे लिख दिया है । और वेन की उत्पत्ति भी यज्ञ से हुई है, फिर न जाने जघर्षी क्यों हुआ । अ० १४ में वेन राजा के देह संघन से ( निपाद ) भील का पैदा होना, अ० १५ में पृथु राजा की उत्पत्ति, अर्चिं देवी का अवतार भी लिखा है, यह भी जीड़िया ही हुये हैं । श्लो० २ में लिखा है:-

तद्दृष्ट्वा मिथुनं जालमृपथो ब्रह्मवादिनः ।

श्लो० ६ में-

एष साक्षाद्दुरंशी जातो लोकरिरक्षया ।

इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥ ६ ॥

अर्थात् यह जोड़ा हुआ है, यह साक्षात् हरि का अवतार है, यह रानी लक्ष्मी हुई ॥

हम नहीं कह सकते कि नदी के देह से सन्तान हो और फिर भी ब्रह्म भाइयों में जी पुत्रों का व्यवहार कैसे हो सकता है । सभी अवतारों के दोष धर कर पुराण कैसे साधा कंचा कर सके हैं ? अ० १९ श्लोक २४ । २५ पृथु के अख्यमेध में से इन्द्र ने घोड़ा चुराने के लिये बहुत से प्रकीरी बाने बनाये, घड़ी पाखण्ड बिहू दिनम्बरजैत बीहू खताये गये हैं । यथा इस श्लोक की टीका में स्पष्ट लिखा है कि-

तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते ॥ २३ ॥

धर्म इत्सु पथर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु । पेशलेपुच वाग्मिषु २५

इस पर श्रीधरी टीका भी ( नग्ना जेनाः रक्तपटा बीड्डाः कापालिकादिकाः ) इस से सिद्ध है कि भागवत के कर्षों से पूर्व जेनी हो चुके हैं । इन्द्र की यज्ञ में पाखण्डी खताना भी विन्त्य है । अ० २३ में उसी अर्चिं रानी का पृथु के साथ सती होना भी लिखा है जो वेन के शरीर से पृथु के साथ ही पैदा हुई थी । यथा-

अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम् ॥२०॥

००० विवेश वह्निं ध्यायती भार्गवादी ॥ २३ ॥

अर्थात् अर्चिं रानी वन को गई, सरने पर पति के चरणों का ध्यान करके अग्नि में प्रवेश कर गई । (यह भार्गव वृष्य वेद, नन्तान भी हुई) फिर खती हुई । यह खती की घाट पुराणों से प्रचलित होगई है । अ० २८ में एक २ स्त्री से एक एक अरब १०००००००० सन्तान लिखी हैं ॥

एकैकस्यां भवतु तेषां राजन्नुर्वुदमर्वुदम् ॥ ३१ ॥

कूटा ठूसा मारे ती फिर कमी क्या थी, पूरी ए संख्या ही लिखे ।। । अ० २९ में लिखा है कि साक्षात् शिव मनु दत्तादि सनकादिक मरीच्यादि भी देखते हुवे भी परमेश्वर को नहीं देखते । यथा—

पश्यन्तोपि न पश्यन्ति पश्यन्ति परमेश्वरम् ।

अब शिव को साक्षात् भगवान् किस प्रकार कह सक्ते हैं । इति ॥

—:0:—

✽ ओ३म् ✽

अथ पञ्चमस्कन्धसमीक्षणम् ।

ब्रह्मा को ईश्वर बताने वाले पौराणिक यदि ध्यान देकर भागवत के स्कन्ध ५ अ० १ श्लोक १४ । १५ को भी पढ़लें तो ज्ञात हो जाय कि ब्रह्मादि कर्मबन्धन से सुख दुःख भोगते हैं, वहां प्रियव्रत से ब्रह्मा ने स्वयं कहा है कि हे पुत्र ! तिन की वेदवाणी रूप होर में अति दुस्तर गुण कर्मों से बन्धे हुवे हम सब ईश्वरार्थ ऐसे भेट देते हैं, जैसे नाथ में बंधे चौपाये बैल मनुष्यों को कार्य करते हैं ॥ १४ ॥

हे अङ्ग ! कर्मानुसार ईश्वर को दिये हुवे सुख दुःख हम भोगते हैं । हम ईश्वर के आधीन ऐसे योनियों में जाते हैं जैसे सम्राट् के पीछे अन्य चलता है, चाहे वह धूप में लेजावे चाहे टगड में ॥ १५ ॥

दण्डक १९ में लिखा है कि प्रियव्रत के पुत्र परम हंस हो गये और ग्यारह अरब वर्ष राज्य किया, नित्य स्त्रीसम्मोग करता रहा। जब कि सृष्टि ही ४ अरब वर्ष रहती है, उसमें १४ मनु होते हैं, फिर स्वायम्भुवके पुत्र प्रियव्रत का राज्य ११ अरब वर्ष लिखना गल्प नहीं तो क्या है ? पुराणानुसार भी लक्ष वर्ष से अधिक किसी युग में भी आयु नहीं होती ॥

\* सृष्टि का सन्धय वेद मनु महाभारतादिमें पुराणों में और नित्यके संकल्पों तक से ४ अरब वर्ष का ही पाता है, विस्तार के भयसे यहां नहीं लिखा गया ।

### समुद्रों का वर्णन—

श० १ द० ३१ में लिखा है । यथा—

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त

सिन्धव आसन्यत एव कृताःसप्तभुवोद्वीपाः ॥ ३१ ॥

राजा प्रियव्रत ने यह शीघ्र कर कि सूर्य रात्रि को नहीं रहता इतने में अपनी प्रकाश फंकेगा, सात परिक्रमा सूर्य के रथ समान अपनी रथ बनाय उस रथ में घुँट कर कीं ॥ ३० ॥ ये जो समुद्र हैं उसी के पहिये की लीक हैं। इसी से सात द्वीप बने हैं ॥ ३१ ॥

यहां भागवत ने वेद का विरोध किया है । क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । यजु० १० । १८०।३

ततः समुद्रोअर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ॥

समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत ॥

इत्यादि प्रमाणों से समुद्र का होना सनातन सिद्ध है, और भागवत ही में भीरसागर समुद्र में विष्णु का जयन, ब्रह्मा की जल से उत्पत्ति आदि लिखी है, फिर यहाँ सात समुद्रों का प्रियव्रतरथनेमि की लीक से उत्पन्न लिखना मूल ही सिद्ध करता है । माया टीकाकार ने भी यहाँ शङ्का की है कि राजा का रथ आकाश में घूमता था फिर पृथ्वी पर समुद्र कैसे बने ?

एक से रथ से समुद्रों में यह भेद कैसे हुआ कि एक से दूसरा द्विगुण तीसरा उस से भी द्विगुण इसी प्रकार एक की लज्जाई चौड़ाई के रथ से पृथक् २ प्रकार वाले समुद्र कैसे बने ?

इस का उत्तर भी स्वयं दिया है कि इस के रथ के सारथि की उतार भगवान् स्वयं सारथि बन जाते थे, रथ को बड़ा लेते थे । परन्तु यह पाठ मूल में नहीं है, कल्पना मात्र है । इस यह प्रश्न करते हैं कि यह इतना बड़ा रथ जय चला होगा तो घोड़े कहां पाँव रखते थे ? तथा धुरा पृथ्वीसे कितना ऊँचा था, घना कहाँ था ? ( भाषाटीकाकार यह भी लिखते हैं कि ब्रह्मा ने स्वायंभुव ननु से जो सृष्टि रचना कराई तब उन्होंने ७ समुद्र ९ द्वीप नहीं बनाये ) परन्तु रथ का दूसरा पहिया कहां रहा, यह नहीं बताया ? क्या वाइसिकल के समान था ?

इस में १ खारी जल, २ ईख का रस, ३ मदिरा, ४ घृत, ५ घीर ( दूध )  
 ई मूत्रे और ७ सातवां शुद्ध जल का समुद्र है । यदि ईख के रस का समुद्र है  
 तो कोई कहां गई, ईख के रस से पौराणिक भ्राष्ट्र मिठाई बनाकर व्यापार  
 करें तो लाभ है परन्तु यह तो खड़ कर मिरका होगया होगा । न जाने यह  
 किसने भरे हैं, यह नहीं लिखा । सूगोलधिद्याविद् मरडली ने मूत्र समुद्रों को  
 चार ही पाया है, ज्योतिष के ग्रन्थों में भी चार समुद्र का ही वर्णन है, फिर  
 न जाने पुराण वालों को ईख, का रस, मदिरा, घृत, दूध, मट्टा करां से सूभा ?

अ० २ में प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र ने ती ब्रह्मा की पूजा पर्वत में आ-  
 रम्भ की और ब्रह्मा ने पूर्वचिती अप्सरा भेजी । भला यह न्याय कैसा है  
 कि भक्त को शुभ करने से हटावे ? उस अप्सरा से "अयुतायुत परिवत्सरोप-  
 लक्षणम्०" १९ \* ( दश हजार को अयुत कहते हैं, यहाँ तो 'अयुतायुत'  
 कहा गया है जो दश लख होते हैं, परन्तु टीका ने दश हजार ही अर्थ किया  
 है ) संयोग किया, नी पुत्र उत्पन्न किये ॥

आगेदण्डक २० में "सासूत्वाऽपसुतानवानुत्तरं गृहएवाऽपहाय०" अर्थ-  
 वह अप्सरा प्रतिवर्ष एक बेटा पैदा कर ऐसे ९ बेटे ब्रह्मा जी पर छोड़ चली  
 गई । यहाँ गणितशास्त्रविद् भी चक्कर खाते होंगे, प्रतिवर्ष एक पुत्र होने पर  
 भी ९ बेटे ही हुवे । १००० वर्ष वर्ष योग ही रहा । बलिहारी ! गणक जी !  
 अध्याय ३ में नामि राजा के पुत्र अययदेय जी की उत्पत्ति है, यह २४ अत-  
 तारों में गिने जाते हैं, परन्तु स्वयं भाषा टीका में लिखा है कि यह जैनमत  
 प्रवर्तक थे । इस से सिद्ध है कि जैनमत भी पुराणों की शाखा है जो वेदों  
 और ईश्वर को भी नहीं मानते हैं । इन को ईश्वरावतार लिखने से हमें संदेह  
 है कि कदाचित् यह कथा जैनियों ने ही पुराणों में बनाई होगी ॥

अ० १६ दण्डक ५-

योवाऽयं जम्बूद्वीपः कुत्रलयकमलक्रीशाभ्यन्तरकोशो  
 नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥

\* द्वितीयाध्याय में छठे दण्डक के भाषाटीकाकार ने ऊर्ध्व पर अङ्क नहीं  
 दिया है और २० में पर दो कर दिये हैं । इसलिये १ दण्डक आगे पीछे  
 ऊर्ध्व हो गया है ॥

जम्बूद्वीप कमलपत्र का १ लाख योजन वर्तुल है । पूर्व अर्ध्यायी में कहें हुके हैं कि एक समुद्र से दूसरा दुगना है तो उस के बीच का भाग भी द्विगुणा ही होगा \* इस हिसाब से १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ लाख योजन ये बातों द्वीप हुवे । योग १२० लाख योजन होते हैं । इस के यदि ५ मील का योजन मान कर मील बनाये जावें तो ६५ लाख मील होते हैं । इस में समुद्रों की योजन संख्या और जोड़ी जाने से पूर्व यह निश्चय करना है कि चार समुद्र यत्र योजन विस्तीर्ण लिखा पाया जा रहा है । यदि इस का फांट १०० योजन है तो हमारे समुद्र का २०० योजन फांट होगा और वह चारों ओर को घेने ही फौला हुआ होगा तो बहुत अधिक भूमि को घेरेंगा, इसी प्रकार तीसरा चौथा भी समझना चाहिये, परन्तु हम द्विगुणा ही रक्षा लगावें तो करोड़ों मील का विस्तार हुआ ॥

विद्वान्त शिरोमणि के गणितार्थाध्यय में लिखा है कि—

प्रोक्ते योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाव्ययः ।

तद्व्यासः कुमुजङ्गसायकमुवोऽथप्रोच्यते योजनैः ॥

अर्थात् पृथिवी की परिधि ४२६७ योजन है । यदि  $4\frac{1}{2}$  मील का एक योजन माने तो २१५६ मील होते हैं, यही परिधि योरोप के वासी विद्वान-त्रिदों ने मानी है, तथा इसी लोक में व्यास १५५१ योजन का बताया है, यह भी उक्त विद्वानों की सम्मति का समादर कारक है । कुछ हम ही पुराण खण्डन नहीं करते हैं, पूर्व भास्कराचार्य जो विद्वान्तशिरोमणि ग्रन्थ के कर्ता हुवे हैं, वह भी स्वयं पुराणोक्त भूगोल का खण्डन अपने ग्रन्थ में इस प्रकार कर गये हैं । यथा—

कोटिघ्नैर्नखनन्द पट्क नख भू भूभृह भुजङ्गेन्दुभि-

ज्योतिः शास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः ॥

तद् ब्रह्माण्ड कटाह सम्पुट तटे केचिज्जगुर्वेष्टनं-

केचित् प्रोचुरदृश्य दृश्यक गिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥

अर्थ—( १८७१८६६२०=०००००० योजन को ज्योतिष शास्त्र के जानने वाले सारी सृष्टि का एक छोटा भाग मानते हैं । बहुत से इस को पृथ्वी की परिधि का मान समझते हैं और पौराणिक विद्वान् केवल इस को लोकोक्त पर्वत की ऊंचाई समझते हैं ॥

\* २० २० में एक से दूसरा द्विगुणा/लिखा ही है ॥

इस से सिद्ध है कि पौराणिक भूगोल का ज्ञान पूर्वोक्तों में भी नहीं था। पृथ्वी की कमलपत्रवत् चपटी बताना और खुम्बू को जड़ में १६ हजार ऊपर से ३२ हजार योजन और एकलक्ष योजन ऊंचा बताना भी भूल है। कोई भी पर्वत ऐसा नहीं जो ऊपर चौड़ा नीचे से पतला हो। तथा एक लाख योजन ऊंचा हो, जड़ इतनी पतली हो, यह ती टूट ही पड़ता। तथा च पृथ्वी की चपटा मानने का खण्डन भी सि० शि० में लिखा है—

यदि सप्ता मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तिरणिःक्षितेः ।  
उपरि दूरगतोपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरवि नेक्ष्यते ॥ १ ॥

अर्थ—यदि पृथिवी चपटी दुर्पणोदर घरातल के समान होती तो सूर्य—पृथिवी के ऊपर गया हुआ भी सायंकाल के पीछे तनुष्यों को क्यों नहीं दीसता ॥

धरती के चपटी होने पर और भी एक आश्चर्य की बात है कि सात समुद्रों के आठ द्वीप होने चाहिये क्योंकि सात दरों के आठ स्तम्भ होते हैं, फिर सात द्वीप लिखना भूल ही सिद्ध होती है ॥

अग्ने पृथिवी का घूमना वैदिक मन्त्रों और प्राचीन ज्योतिष आचार्यों के मत से लिखा जाता है। पाठक विचारें कि पुराण वेद के क्षेत्रे प्रतिकूल हैं भूमि अपनी कक्षा में स्थित होकर सूर्य की परिभ्रमण करती है। यथा हि—  
या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।  
सा प्रब्रुवाणा वरुणाथ दाशुषे देवेभ्यो दाशदुविषा विवस्वते

( अ० १० । ६५ । ६ )

अर्थ—( या गौः \* ) जो पृथिवी ( अवारतः ) निरन्तर अर्थात् सदा ( पयो दुहाना ) अन्न, रस, फल, फूल आदि पदार्थों से प्राणियों की पूर्ण करती तथा ( व्रतनीः ) अपने नियम का पालन करती ( प्रब्रुवाणा ) परमेश्वर की महिमा का उपदेश करती ( दाशुषे वरुणाय ) दानी और श्रेष्ठ जन को ( देवेभ्यः ) और विद्वानों को ( हविषा दाशत ) अनेक सुख देती ( वर्तनिम् ) अपनी कक्षारूप मार्ग में ( विवस्वते ) सूर्य को ( पर्येति ) चारों ओर घूमती है ॥

\* पृथिवी का नाम निघ० १ । १ में गौः है, जिस का अर्थ 'गच्छतीति गौः जो चलती है सी गौः ( भूमि ) है। इस से भी सिद्ध है कि प्रायः पुराण भूमि का चलना मानते थे ॥

पृथिवी केवल सूर्य के चारों ओर ही नहीं घूमती किन्तु साथ ही साथ अपनी (अप) कीली पर भी घूमती है, जैसे लट्टू अपनी कीली पर भी घूमता है और अपनी जगह से भी हटता है और जैसे गाड़ी का पहिया अपनी घुरी पर घूमता है और साथ ही साथ सड़क पर भी घूमता जाता है । इससे प्रभाव यह है—

**आयंगी. पृथिवीरुमीदसदन्मातरं पुरः । पितरञ्च प्रथन्त्स्वः ॥**

( ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४९ और यजु० अ० ३ मं० ६ )

अर्थ—( आयम् ) यह (गीः) पृथिवी लोक ( मातरश्च ) जल को ( अहत ) प्राप्त होकर अर्थात् जल के सहित ( प्रभिः ) अन्तरिक्ष में ( आक्रमीत् ) आक्रमण करता है अर्थात् अपनी घुरी पर घूमता है । ( च ) और पितरश्च + ) सूर्य के भी ( पुरः तयन् ) चारों ओर घूमता है ॥

इस विषय में बहुधा मनुष्य कई प्रकार की गड़बा किया करते हैं कि पृथिवी चलती हुई प्रतीत क्यों नहीं होती ?

**उत्तर—कुलालचक्रमभिवामगत्या यान्तो न कीटा**

**इव भान्ति यान्तः ॥ सिद्धान्तशिरोमणि ॥**

अर्थ—जैसे कुम्हार के घूमते हुवे चाक ( चक्र ) पर बैठे हुवे कीड़े उस को गति को नहीं जान सकते, ऐसे ही मनुष्यों को पृथिवी चलती हुई नहीं प्रतीत होती । अन्यत्र—आर्यभटीय—

**अनुलोमगतिर्नास्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ॥**

**अचलानि भाति तद्वत् सपश्चिमगानि लङ्कायामिति ॥**

अर्थ—जैसे नौका में बैठा हुआ मनुष्य किनारे के स्थिर वस्तुओं को दूसरी ओर से चलते हुवे से देखता है ऐसे ही मनुष्यों को सूर्यादि नक्षत्र जो स्थिर हैं,

\* यहाँ जल को अलङ्काररूप में पृथिवी की माता कहा है । यथाह—

**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः "अद्भ्यः पृथिवी" इत्यादि ॥ तैत्ति० उ० ॥**

+ यहाँ सूर्य को अलङ्काररूप से पृथिवी का पिता कहा है क्योंकि सूर्य ही से पृथिवीकी (अपनी कक्षा में) स्थिति, मनुष्योंका जीवन, वर्षा और उस से उत्पत्ति आदि की उत्पत्ति होती है ॥



परिचम की ओर चलते हुये से दीखते हैं और पृथिवी स्थिर प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में भूमि ही चलती है ॥

दण्डक १२ में चार वृक्षों का वर्णन है कि ११ हजार योजन ऊंचे चारों वृक्ष हैं। आम, जामन, कदम्ब और बट; इनके फल आठ सौ इकसठ हाथ लम्बे वायुपुराण में लिखे हैं, फल कुण्डों में आकर गिरते हैं, उन की चारों नदी चारों दिशाओं को बहती हैं, उन में स्नान करते हैं। भारतवर्ष की ओर की जम्बू नदी बहती बताई है। यथा २० १९-

एवं जम्बूफलानामऽत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणां

विना गुठली की आमन हाथी सी गिरती हैं, ४० कोस तक सुगन्ध देती नदी बहती है। अन्यो की ती खबर नहीं, पर जम्बू नदी ती इधर ही होनी चाहिये थी, सो है नहीं ॥

इस पर भाषाटीकाकार व संशोधक पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र भारतधर्म-महानखल के महोपदेशक के हृदय में भी शङ्का हुई थी, टिप्पणी में चित्त कांपना छिपाना लिखा है, परन्तु उत्तर में यही कह टाल दिया है कि सभी वर्णाश्रमधर्म लुप्त हो गये, सो भगवान् भी डर गये कि यह दुष्ट लोग धर्मस्थानों को अष्ट कर देंगे, अतः छिपा दिये हैं, किसी का प्रभाव हर लिया है। वाह क्या ठीक उत्तर है ॥ २० २८-

छमेरु के ऊपर १० हजार योजन लम्बी ४ हजार चौड़ी ब्रह्मा की बनाई स्वर्णपुरी है—७० १९ में २० १ ॥

तत्र भगवतः साक्षाद् यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो  
वामपादाङ्गुष्ठनिर्भन्नुर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तः प्रविष्टा  
या बाह्यजलधारा तञ्ज्वरणपङ्कजावनेजनारुणकिंजल्कोपर-  
क्षिताखिलजगदधमलापहोपस्पर्शनाऽमलासाक्षाद्भगवत्प-  
दोत्पलुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽतिमहता कालेन युगस-  
हस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्ध्निव्यवततार ॥ १ ॥

जब वामन अवतार बलि के यज्ञ में पृथिवी नापते थे तब वार्धे पांव का अंगूठा ब्रह्माण्ड की छे बाहर निकल गया उस से जलधारा चरकमल के अक्षर की धोने से सात २ हजार युगों से नीचे गिरी, वह गङ्गा है ॥

समाप्ता—( १ ) ब्रह्माण्ड के अन्दर से पानी निकलना की ही असम्भव बात है, क्या ब्रह्माण्ड के बाहर पानी है ? क्या ब्रह्माण्ड के भीतर वायु का यह अर्थ है कि कोई अग्रे जैसा यज्ञक हमारे पृथिवी और सूर्यादि के चारों ओर है और वह अग्रे नाके क अग्रे के समान कहीं जल के पात्र परा है ?  
 ( २ ) वह धारा लाल रङ्ग के अन्दर को लेकर १००० युग में ती उतरी परन्तु सुधीं बनी ही रहती ती अथ गङ्गा से कुछ जल क्यों नहीं ?

( ३ ) हजार युग ती एक मन्वन्तर में भी नहीं होते ३१ पतुर्युगियों का ही १ मन्वन्तर होता है ती १ मन्वन्तर के २५५ युग हुए ॥

( ४ ) यदि १००० युग में वहां से पानी की गति नीचे को हुई ती कितनी दूरी से वह जल गिरा, आप स्वयं अनुमान कर लींगे। यदि १ मिनट में १ मील से जल गिरे ती भी १ घण्टे में ६० मील १०० घण्टे में ६०० मील हुआ ती गहरीनों वर्षों में ही कौड़ी मील ही जादेगा फिर युग कहां, युग पर भी मन्तोष नहीं १००० युग बता दिये है १००० युग कौं ती प्रलय समय ६० १५ में ती कल्पान्त होजाता है, फिर कल्प के मध्य में यह उत्तान्तथा ना असम्भव क्यों नहीं ?

इलावृते तु भगवान् शक्य एक एषु पुमान् न ह्यशाऽपरो नि विशति इलावृत रूप से ती शिव ही एक पुरुष है ( अन्य सब स्त्रियां ही रहती हैं )

समीक्षा—मला वहां उष्टि कैसे होती है? क्रियों को कौन पैदा करता है?  
 भवानोनाथे: स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो०

हजार अरब स्त्रियां धर्ती रहती हैं ( वहां नाथ शब्द बहुवचनान्त है। इम से वहां अन्य पुरुष रहने सिद्ध हैं ॥

अ० १८, १९ में प्रत्येक क्षण ( वयं ) में एक २ अवतार की स्तुति एक २. भक्त करता है, ऐसा लेख है। तो क्या इलाह में कोई दूसरा भक्त स्तुति करता है, वहां ती कोई पुरुष है ही नहीं स्तुति करने कहां से आगया। तथै यमप नहीं लिखा, क्या सदाकाल एक ही पुरुष स्तुति करता रहता है ? भारत कर् से नरनागयण तप करते और नारद स्तुति करते हैं ॥ अ० १९ व० ९। १०

यावन्न्यानसीत्तरमेवैरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्थाऽऽ दर्शतलोपमा वस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित् पुनः प्रत्यपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृतासीत् ॥ ३५ ॥

भाषाटीकाकार कहते हैं कि—मानसोत्तर और सुवर्ण पर्वत के बीचमें जितनी भूमि है उतने ही प्रमाण की एक करोड़ साठे सत्तावन लाख योजन दूसरी भूमि स्वादिष्ट जल की सागर के आगे है, उस में प्राणी रहते हैं, उस से परे सुवर्णमय भूमि है ॥

यह द्वीप का वर्णन है क्योंकि मानसोत्तर दक्षिण मध्य ( मठे ) के समुद्र से आगे है ॥ पुष्कर द्वीप कटा लिखा है यहां भी गहवड़ है क्योंकि उत्तमैशाने ७ वें का वर्णन और सो है, समझ में नहीं आता कि जब मठे का समुद्र कटा है और उस से आगे ही मानसोत्तर लिखा है, इसी को पुष्कर द्वीप कहा है फिर यह बातवां क्यों नहीं हुआ ॥ अ० २० ५० २९ । ३० देखो । इसी मानसोत्तर और सुमेरु के बीचके भूभाग का उल्लेख वर्णन है इस को स्वादुदक समुद्र शुद्ध जल से घिरा भी एक दशहकों में गताया है । और फिर ६० ३४

### ततः परस्तात् लोकालोकनामाचलो० ३४

यस द्वीप से परे लोकालोक नाम पर्वत है इत्यादि लिखा है । यह पर्वत तौ सब की चारों ओर होने से कौड़ों मील लम्बा चाहिये जो सर्वथा झूठ ही हो सकता है ॥

भाषाटीकाकार “ आनुवंशिकीपत्र ” के अर्थ को छोड़ गये हैं । क्योंकि आज कल तौ भूमि को सभी अंग्रहाकार मानते हैं । भास्कराचार्य नेदर्पणाकार पृथिवी का खण्डन किया है सो इस पूर्व लिखा चुके हैं । ८ करोड़ ३९ योजन है वह स्वर्णमयी है और शीशिके समान है । यहां शिव तन्त्र का प्रमाण दिया है कि पृथिवी २५३५००६० के परिमाण में है । इस ४९९९ योजन पृथिवी की परिधि का परिमाण पीछे दे आये हैं । देखो पृ० ( ६३ )

जब मानसो द्वीप से भी आगे अर्थात् शुद्ध स्वादुदक समुद्र से आगे कौड़ों योजन भूमि बताना भारी भूल भाग होती है । क्योंकि यहां तौ लोकालोकबताया है, अभी स्वर्णमयीभूमि बताने लगे । आगे पृथिवी का समस्तविस्तार ५० कौड़ योजन बताया है । यथा—

एतावां ह्येकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः

कविभिः, स तु प्रज्वाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य

तुरीयभागीऽयं लोकालोकाचलः । ६० ३८ अ० २० ॥

समस्त पृथिवी ५० कोड़ योजना है उस के बीसवें भाग में लोकाकाश पर्वत है ॥

६० ३५ के ऊँचे १५३५०००० योजना का विस्तार खादूद से बाहर का शरीर इतनी ही भूमि समुद्र पुच्छर के बीच की लगाने से ३१५००००० योजना होती है । यदि शिषतत्रोक्त ३९०००००० योजना की भी मिला लें तो भी ११५४००००० योजना ही होता है ५० कोड़ तो फिर भी नहीं हुये ॥

“अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ।

सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कीट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥

अ० १० श्लोक ४३ श्रीवरी टीका-

अण्डमध्यगतः किं तन्मध्यं तदाह द्यावाभूम्योः पूर्वोत्तर कपालयोर्यदन्तरं मध्यस्थानं सर्वतः पञ्चविंशतिकीट्यः ४३

अर्थात् पृथिवी और सूर्यमण्डल के बीच २५ कोटि योजना का प्रासला है । टीकाकार भी सूर्य मण्डल का अर्थ झुलाक करते हैं, यह शूल है ॥”

आगे अ० २१ द० १ में २५१००००० योजनाका प्रासला सूर्यमानसोत्तरकी भूमि का बताया है, इस लिये परस्पर विरोध है ॥

अ० २१ द० २ में वर्णित है कि दिव् मण्डल व भूमण्डल द्विदल समान है, टीका में लिखा है कि जैसे दोनों दल बराबर होते हैं, ऐसे ही भूमि के समान ही दिव्मण्डल भी है, जिसे खगोल कहते हैं । यथाद्विदलयोः इत्यादि ॥

समीक्षा—यह भारी शूल है, पृथ्वी से बड़े २ बहुत बड़े लोक सूर्यादि ( झुलाक ) खगोल में विराजते हैं, फिर भूमण्डल के समान ही खगोल कैसे हो सकता है ॥

द० ३ में—स एष उदगयन दक्षिणायन वैषुवत संज्ञा-  
भिर्मान्द्यशौघ्रघसमानाभिर्गतिभिरारीहणावरोहणसमान य-  
थासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणिदीर्घ-  
ह्रस्वसमानानि धत्ते ॥ ३ ॥

यस्यमेप्रतुल्योर्वर्त्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवन्ति ॥

अर्थात् सूर्य उत्तरायण दक्षिणायन में जन्म, श्राद्ध, जाँर समान गति से चलता है ॥३॥ जब मेघ तुल राशि पर आता है तब दिनरात्रि समान होती है ॥

समीक्षा—सूर्य उदा एक ही गति चलता है, पृथ्वी भी उदा एक ही गति पर चलती है, यह ती पृथ्वी की गति से ऋतुभेद होता है, इसी से आयन भेद भी होता है। मेघ तुल में रात्रिदिन समान बताना भी भारी भूल है, जब कि गवांर भी “ १२ कन्या १२ मीन दिनरात बराबर कीन ” कहते हैं। उदा कन्या मीन के सूर्यो में ही दिनरात बराबर होता है ४

“ यदा वृषभादि पञ्चसु च राशिषु चरति तदा अहान्येव वर्द्धन्ते ह्यसति च सासि मारुजेकैका घटिका रात्रिषु ” ॥४॥

अर्थ—जब सूर्य वृषभादि राशिओं पर चलता है तब दिन बढ़ते हैं और रात्रि प्रतिमास १ घड़ी घटती है ॥

समीक्षा—यह भी भूल है क्योंकि उत्तरायण धन के सूर्य के ९। १० अंशों पर हो जाता है तभी से दिन बढ़ता है, ६ मास बढ़ता है, फिर ६ मास घटता है। और कन्या के १२ अंशों पर पूरा ३० घड़ी हो जाता है, दिनरात बराबर होते हैं वृष मीन के १० अंश से ऊपर ही दिनरात बराबर होजाते हैं यह गणित शास्त्र भागवतकर्ता का नहीं आता था, यही छात होता है। ट:काकर भी ऐसे ही हैं ॥

द० २ में जहाँ सूर्य त्रिलोकी को तपता है, लिखा है, उस पर टीका भी प्रकृत करती है कि सूर्य पाताल में प्रकाश नहीं पहुँचाता फिर व्यासदेव ने त्रिलोकी क्यों कहा। उत्तर भी खुद ही दिया है कि छुरुदेव जी ने सूर्य को नाँचे के बात लाक ही कथा नहीं कही है, पृथ्वी के ऊपर के तीन लोक मान कर उन का ही वर्णन है। धन्या ३० २४ में ती पाताल के बातों पर्दा का वर्णन किया है ॥

“ सूर्य की दूरी

एवं नव कोटय एकपञ्चाशत्क्षायि योजनानां मान-  
सोत्तरगिरिपर्विद्वर्त्तनस्थोपदिशन्ति ॥ ७ ॥ अ० २१

अर्थात् मान उत्तर पर्वत के ऊपर ९ को ५५ लाख योजन दूर सूर्य घूमता है ॥

## सूर्य की गति ।

यदा चैन्द्र्याःपुर्याः प्रचलते पञ्चदश घटिकाभिर्याभ्यां  
सपादकोटिद्वययोजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि  
घोपयाति ॥ १० ॥

कथं इन्द्रपुत्रीने सूर्य चलता है तब १५ घड़ी में सवा दो कोड़ ११५००००० इया  
वारह लाख कुछ ऊपर चलता है । सवा दो कोड़ में सवा वारह लाख भी  
मिलाने से २३९५००० हुवे ॥ और भी—

एवं मुहूर्त्तान चतुस्त्रिंशल्लक्षयाजनान्यष्टशताधिकानि  
सौरो रथस्वधीमयोसौ चलसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥ १२ ॥

इस प्रकार दो घड़ी में ३४ लाख ८ सौ योजनसे अधिक सूर्यरथ चलता है ।  
समीक्षा—इस हिसाब १५ घड़ी में २५५०६००० योजन होता है अब  
पाठक विचारें कि दरदक १० में २३९२५००० ही हीसा था ॥

## सूर्य रथ के धुरे—

द० १॥ के टीका में दो धुरे बताये हैं, एक जो सुमेरु से मानसोत्तरतक  
बैला है, वह १५५५०००० योजन का है, दूसरा इससे चौथाई है ( यह लेख  
दूरी के हिसाब लगा कर लिखा है जो कि ८० २० द० ३५ में बता आये हैं )

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभाग  
विशालस्तावान् ॥ द० १५ ॥

सूर्यरथ ३६ लाख योजन चौड़ा ९ लाख योजन ऊंचा है ॥

समीक्षा—अ० २० बली० ४३ में २५ कोड़ ऊंचाई लिखी है क्या सुमेरु पर  
धरे धरे में और ९ लाख ऊंची छोटी से भी अघर हो सूर्य चलता है जो  
२५ कोड़ लिख चुके हैं । द० १९—

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवल्लयस्य  
क्षणेन सगव्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥ १६ ॥

अर्थात् एक लाख साढ़े नौ करोड़ योजन पृथ्वीचक्र के घूमने के लिये  
एक क्षण में २००० योजन और २ कोश चलता है । भाषाटीका ने ९०१५०००  
योजन अर्थ इस दरदक का जाने कैसा किया है ॥

चन्द्रलोक वर्णन ७०.२२

एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्ठात्पन्न-

योजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य स० ॥ ८ ॥

अर्थात् चन्द्रमा सूर्य से ऊपर लाख योजन ऊंचा है ॥

समीक्षा—ग्रहलाघव तथा सिद्धान्तशिरोमणि और योपियन खगोल विद्याविद् विद्वानों के सिद्धान्तानुसार भी चन्द्रलोक पृथ्वी के समीप और सूर्य से बहुत नीचे है परन्तु भागवतकर्ता को क्या खबर, ऐसी भूल क्या हुई। "अर्कोदधश्चन्द्रकक्षा" वाचना भाष्ये ॥

२४ वें अध्याय में शिशुसार चक्र का वर्णन है, जिसमें सद्य यहाँ कट निवास, पूंछ, कोख, छाती, मस्तकादि लिखा है ॥

ग्रहण विचार ।

सूर्यसे नीचे १० हजार योजन राहु है; ऐसा किसी का मत है। यद्यत्-  
अधस्तात् सवितुर्याजनायुतेस्वर्भानुर्नक्षत्रवञ्चरतीत्येके ॥१॥

यददस्तरखोर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमा-  
चक्षते, द्वादशसहस्रं सोमस्य, त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पवापि  
तद्व्यवधानकृद् वैरानुबन्धः सूर्यचन्द्रमसावभिधावति ॥२॥

टी०—राहु के अधोभाग में रह कर सूर्य तपता है, सूर्य का विस्तार १० हजार योजन, चन्द्रमा का १२ हजार योजन, राहु का १३ हजार योजन का विस्तार है, वैर याद कर ग्रहण में राहु सूर्य चन्द्र की ओर आगता है ॥

समीक्षा—हम इस प्रकरण में इतना ही लिखेंगे कि ज्योतिः शास्त्र से भागवत का कितना भेद है। ग्रहलाघव में स्पष्ट है कि—

आदयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः

अर्थात् सूर्य की चन्द्रमा दकतासे है और चन्द्रमा की पृथ्वी की जायत थापती है, तब ग्रहण होता है। पृथ्वी और सूर्य के बीच में चन्द्रमा है। चन्द्रमा सूर्य के प्रकाशसे चमकता है। देखी भास्कर प्र० उत्तरार्धे पृ० २३  
८१ । ८३ ॥

अध्याय २५—

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्वाजनसहस्रान्तर आस्ते ॥ १ ॥

पातालकेन्द्र में ३० हजार योजन विस्तार से शिवजी संकषण नामी रहते हैं ॥

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्त्तःसहस्रशिरसः  
एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणंसिद्धार्थेऽवलक्ष्यते ॥२॥

अनन्त नामक जिस शीव के हजार शिरों में एक शिर के ऊपर यह भूमि  
मण्डल सरसों के दाने के समान जान पड़ता है ॥ २ ॥

समीक्षा—जिस का ३० सहस्र योजन विस्तार बता चुके हैं उसका नाम  
अनन्त कहना उचित नहीं है, और उस के हजार शिर में एक शिर ३० यो-  
जन में की बुद्धि, फिर पृथ्वी की सरसों के सा दाना बताया कैसी दिव्यता  
है। सरसों का दाना अर्थ भी दाना पंजवालाप्रवाद का सम्मत भाषाटीका  
में लिखा है। ३० योजन के शिर पर ५० फीट योजन की भूमि की सरसों  
के दाने समान धराने मात्र से ही बुद्धि की क्षमता मिलती है। फिर यह  
शीव काहे पर बड़े या खड़े हैं। वह भूमि कहां है ?

### अथ षष्ठस्कन्ध समीक्षा

अ० १ में अ० २१ से अजामिल का उपाख्यान है ॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः ।

नाम्ना नष्टसदाचारी दास्याः संसर्गदूषितः ॥ २१ ॥

वन्द्यक्षकैतवैश्रौर्धर्महितां वृत्तिमास्थितः । इत्यादि ॥

अर्थात् कान्यकुब्ज देश में कोई अजामिल नामक दासीपतिकुर्मी था,  
जो जेल में जुड़े में ललछिद्र में खोरी में गुजर करता था, १० बेटे थे, छोटेका  
नाम "नारायण" था। सदा उसी में प्यार रखना था, मरते समय यम के  
दूतों को देख " (पुत्र) नारायण ! " कह बिहलाया तब विष्णुके दूत जल्दी  
आगये, यम के दूतों को धमकाने लगे कि तुम कौन हो, क्यों खड़े हो, क्यों  
आये हो। यमदूतों ने कहा—यह पापी महापापी है वैदिक धर्मका विरोधी  
है। विष्णु के दूतों ने कहा— ( अ० २ में ) अहो ! न्यायासन पर ही अन्याय  
हो तो प्रजा कहां जावे ? यमराज ऐसा दबड़ होते हैं, इसने नारायण का  
नाम लिया है, हम ले जावेंगे और लगेयें ॥

समीक्षा—पाठक स्वयं धिचरें, कैसा न्याय है। विष्णुकी कानून का आगे  
न्याय को १ शोक देते हैं—



रत्नैः सुरापो मिप्रभ्रुमग्रहहा गुरुतल्पमः ।

स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पाताकिनोऽपदे ॥ ९ ॥

सर्वबासप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।

नामव्याहरणं विष्णोर्यत्स्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥

अर्थात् घोर, शरावी, सित्रद्वोही, गुणच्छोगामी, स्त्री राजा पितृ और गौ को मारनेहारा और भी जो पापी हैं विष्णु के नाम लेनेमात्र सेक्षुद्धो जाते हैं ॥१०॥ क्या अच्छा प्रायश्चित्त है । अध्याय ३ में यमके वृत्तोंमें यमके कहा कि कितने न्यायकर्ता संसार में हैं ? इस में बहुत गड़ बड़ हो जाता है । इस ती एक आप ही को न्यायकारी आगते चं । तब यमने कहा—नहीं मुझ से बड़े और विष्णु हैं ॥

अ० ५ में नारदधी ने दक्ष के पुत्रों को ज्ञानोपदेश दिया, दक्षने शाप देदिया । भली गुनदक्षिणा मिली ॥

अ० १८ में इन्द्र मौमी दिति को गर्भ में चुसगया ७ टुकड़े करे, फिर प्रत्येक के सात २ कर ४९ टुकड़े करदिये, गर्भ रोया, इन्द्र ने कहा 'मत रोओ' इस प्रकार ४९ नरुत हुए ॥

—\*\*\*—

### अथ सप्तमः अधः समीक्षा=

अ० १ श्लो० २५-३० तक लिखा है कि काय स्नेह, वैर भावादि किसी प्रकार से भी कृष्ण को याद रखने से मुक्ति हो जाती है ॥

समीक्षा—हमारी संकल्पितमेंती ईश्वरकी स्तुतिप्रार्थनोपासनादिसाम्बिक शुभ कर्मों से ही सुख होता है । यदि कृष्णादिको कंसादि दैन्य ईश्वर मानते जानते, तो लड़ते ही क्यों । कंसादिकों ने कभी भी ईश्वर मान कर वैर नहीं किया । बिना ईश्वरीयज्ञान के मुक्ति नहीं होती । वेद कहते हैं—

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था खिद्यतेऽयनाथ

प्रथम अध्याय में विष्णु के द्वारपानोंको शाप हुआकि राक्षस होजाओ, फिर प्रसन्न होकर कहदिया कि यदि वैर करोगे तो ३ जन्मोंमें मुक्तिपाजाओगे श्लो० ३७—जब विष्णुके मारने मात्र से पवित्र हो मुक्तिपा जाते थे तो हिरण्यक

हिरण्यकशिपु तो सृष्टि के आरम्भ कल्पयुग में ही हुवे होने, मरकर मुक्ति पाये या कहीं मरक स्वर्ग में रहे या तभी रावण कुम्भकर्ण बनगये ? रावण कुम्भकर्ण त्रेता में मारे गये और वहां भी उन का मुक्ति पाना वर्णित है फिर द्वापरान्त में शिशुपाल दन्तवध्न कैसे जावने ? क्या मुक्ति से भी आपकी मत में प्रत्येक युग में ही लौट आते हैं ? यह २० वां कल्पियुग है, इस से पूर्व ५००० वर्ष हो ता शिशुपालादि का मरेगुले हैं, फिर पीनेदी अर्ध वर्ष तक ईश्वर-न्तर में क्या इन पापदों के ३ जन्म ही हुवे । या प्रत्येक युग में मर २ जी जी जाते हैं ! पीराशिक विश्वास है कि प्रत्येक त्रेता में राम, द्वापर में कृष्ण होते हैं और रावण कंसादि को मारते हैं । अ० १० श्लो० १५ से २१ तक कहा है कि हे प्रह्लाद । २१ पीढ़ी तेरी पवित्र हो गई, श्लोक २९ में ब्रह्मा से नृसिंह ने कहा कि ऐसा वरदान न दिया करो जैसा हिरण्यकशिपु को दे दिया । इस से क्या विष्णु ब्रह्माकर एक बिट्ट हो सकेंगे ?

### अथाष्टमस्कन्ध समीक्षा

अ० ६ में एक स्त्री का अवतार लिखा है, उसी ने देव दैत्यों को समुद्र मथन का उपदेश दिया है । क्या यह २५ वां अवतार है ? और (न जाने यहाँ स्त्रीरूप की क्या आवश्यकता थी ) “ मन्दर ” पर्वत की रै वासुकि सर्प की नेती बनाकर देवासुरों ने समुद्र मथा, मन्दर को उठा लाये, दैत्य देव दूबने लगे, मरते देख भगवान् आये, उन की जिवापर, हाथ पांव जोड़े, स्वयं पर्वत की गरुड़ पर धर लाये । इत्यादि असंगत अलम्भव कथा भरी हैं । अ० ७-पहाड़ नीचे को सरकने लगा, तब कछवा बन नीचे बेट गये ॥ ८॥ लाख योजन का पहाड़ पीठ पर धर लिया । यथा—

दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनं प्रस्तारिणा द्वीपइवापरोमहान् ९

पदनं सुजातासा ज्ञातं हुवा है ॥

अ ७ में समुद्र मथन से रवरूप घोड़ा, हाथी, अप्सरा, विष, मदिरी, पन्धन्तरि वीद्य, सब निकले लिखे हैं । अ० ४१ में साहनी स्त्रीरूप भगवान् का अवतार लिखा है ॥

### स्तनभारकृशीदरीम् ४३

इत्यादि रूप का वर्णन है । दैत्यदल का भवश मोहांगया, असूत का नाँट बल से देवतों को दे दिया ॥

समाज्ञा—यह धर्मरक्षार्थे कैसा अवतार । किस धर्म की रक्षा की ? श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥१॥

जब धर्म की ग्लानि, अधर्म की वृद्धि होती है तब अवतार धर्मरक्षार्थे होता है । मोहनी अवतार छलार्थे हुआ ॥ अध्याय १२-

मोहनी रूप पर शिव जी मोहित होगये । यथा—शिव ने सुना कि मोहनी रूप ने दैत्यों को मोहित कर देवों का अस्रत दिलाया था, बेल पर चढ़कर विष्णु के पास गये, स्तुति की कि महाराजावह रूप मुझे भी दिखा दो भगवान् छिप गये और बगोचे में एक उत्तम स्त्री टहलती फिरती देखी-

ततो ददर्शीपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवदुमे ॥१८॥

देख कर निर्लज्ज होगये, विह्वल ही उस के पास चहुंके ॥ २५ ॥

तस्यानुधावतोरेतश्चस्कन्दाऽमोघरेतसः ॥ ३२ ॥

यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ।

तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥

शिवजी के आगते खतय बोधस्खलित हो जहां २ भूमि में गिरा, वहां २ नदी पहाड़ वन उपवन सब सोने चांदी के क्षेत्र होगये ॥

समीक्षा—इस कथा से शिवजी को अज्ञानी सिद्ध किया है, इस लिये साध्य नहीं हो सकती । न सोने चांदी के कहीं क्षेत्र ही हैं । बलायत में सोने चांदी की बहुत खानि है, क्या बलायत में ही शिवजी भागे थे ?

कुमासालङ्का ( वामन )

अ०११ में कश्यपजी ने दिति को पयोत्र अवतार्या है कि फल्गुन शुक्ला १ से ११ तक व्रत करे । वही व्रत दिति ने किया, जिस से वामन अवतार हुआ है । यह अ० १२-में वर्णित है ॥

समीक्षा—ध्यान देने योग्य बात है कि फाल्गु शु० १३ को व्रत समाप्त हुआ तो फिर भाद्र शु० १२ को वामन का जन्म हुआ है, पूरा १ दिन कम है ।

भास में ही धामन का जन्म हुआ होगा । धामन जी ने ३ पग में तीनों लोक नाप लिये, इत्यादि प्रसिद्ध वृद्धविरुद्ध कथा का यहाँ उल्लेख कर ग्रन्थ नहीं बढ़ावेंगे ॥

—\*—

### अथ नवमस्कन्ध समाक्षा

जगत में यह ईश्वरीय नियम प्रचलित है कि स्त्री पुरुष नहीं बन सकती और पुरुष स्त्री नहीं बन सकता है परन्तु पुराण वालों ने इस ईश्वरीय नियम को भी उलट दिया है, श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध अध्याय १ में लिखा है कि सूर्यवंश के आदि पुरुष महाराज वैवस्वत मनु के जो इक्ष्वाकु आदि १० पुत्र प्रसिद्ध हैं ( वैवस्वत मनु के यह दश पुत्र थे—इक्ष्वाकु, नृग, अर्यपाणि, दिष्ट, पृष्ट, करूपक, नरिप्यन्त, पृपन्न, नभग और कवि ) उन स्त्री उत्पत्ति में पूर्व वैवस्वत मनु ने सहर्षिवसिष्ठ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया परन्तु उक्त यज्ञ के प्रताप से मनु की स्त्री के गर्भ से इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई. कन्या को देख कर मनु की बड़ा असन्तोष उत्पन्न हुआ और उन्होंने वैसिष्ठ से कहा—

भगवन् किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ।

विपर्ययमहो कष्टं सैवं स्याद्ब्रह्मविक्रिया ॥ १७ ॥

यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ।

कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥

तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान् प्रापतामहः ।

हीतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे नृपनन्दनम् ॥ १९ ॥

एतत्संकल्पवैषम्यं हीतुस्ते व्यभिचारतः ।

तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं सूतेजसा ॥ २० ॥

एवं व्यवसितो राजन् भगवान्स महायशाः ।

अस्तौषीदादिपुरुषम् इलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१ ॥

तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः ।

ददाविलाभवत्तेन सुद्यम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥

इन झाकों का अभिप्राय यह है कि वैवस्वत मनु के जब इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई तब मनु ने मूर्ध्नि वशिष्ठ से कहा कि यह उलटा कार्य क्यों हुआ ? अर्थात् सेने जो पुत्र की प्राप्ति के वास्ते यज्ञ किया था उस से पुत्री उत्पन्न क्यों हुई ? आप सब लोग वेद ( मन्त्र ) वैदिक कर्म और ब्रह्म के ज्ञान ने वाले हैं, आप को घटासे ऐसा उलटा फल होना उचित नहीं है। वशिष्ठमहाराज ने उत्तर दिया कि होता के उलटे संकल्प से यह उलटा फल हुआ है परन्तु मैं अपने तेज से तुम को उपुत्र बनाऊंगा। ऐसा कहके वशिष्ठ ने विष्णुकी स्तुति की, उस से प्रसन्न होके जो विष्णु ने वशिष्ठ को धर दिया उस ही धर के प्रताप से मनु की पुत्री इला पुत्रप होगई और उसका नाम इत्युन्न रखा गया॥

इन महाराज इत्युन्न की वही गति हुई ऐसी एक घुटे का कथा हितो-पदेश में लिखी है। यह बनावटी कथा है कि किसी नगर के समीप एक ऋषि रहा करते थे, उन के आश्रम पर एक चुही का बच्चा फिरा करता था, एक दिन चुही के बच्चे को खाने के निमित्त एक बिल्ली भपटी, ऋषि ने दया करके चुही के बच्चे से कहा कि “ स्वमपि आर्जारीभव ” इतना कहते ही चुहीका बच्चा बिलाव बन गया, किसी दिन उस बिलाव पर कुत्ते ने हमला किया, ऋषि ने उसे बिलाव से छुता बना दिया, इन ही प्रकार से चुही के बच्चे को बढ़ाते बढ़ाते सिंह रूप में परिश्रित कर दिया, चुही का बच्चा जब सिंह बनकर अनभय विचरने लगा तब उन के अन्य सिंह उन का यह कहके निरादर करने लगे कि “ रे ! तू तो वही चुही का बच्चा है जिसे ऋषि ने बिलाव से बचाया था परन्तु हम लोग असली सिंहवंश के सिंह हैं, तू हमारी बराबरी क्या करेगा ” इस अपमान को कृत्रिम सिंह न सहसका और समझा कि जब तक यह ऋषि जियेगा तब तक मेरा ऐसे ही अनादर होता रहेगा, इस से प्रथम ऋषि को मार डालना चाहिये, यह विचार कर ज्योंही वह ऋषिकी ओर चला त्योंही ऋषि ने उस के बारे अभिप्राय को समझ के कह दिया “ पुनर्भूषिकोभव ” उस इतना कहते ही वह फिर चुहा होगया। ऐसे ही इत्युन्न फिर भी स्त्री होगया ॥

स एकदा महाराज ! विचरन् मृगयां वने ।

वृत्तं कृति । सामात्यैरव मरुहू सैव मनु ॥३॥

प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ।  
 दंशितोनुसृगं वीरा जगाम दिशमुत्तराम् ॥२४॥  
 स कुमारी वनं मेरोरधस्तात् प्रविवेश ह ।  
 यत्रास्ते भगवान् सर्वा रममाणस्सहोमया ॥२५॥  
 तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुबुध्नः परवीरहा ।  
 अपश्यत् स्त्रियमात्मानम् अश्वं च बद्ध्वां नृप ॥२६॥  
 तथा तदनुगास्सर्वे आत्मा लङ्घ्यविपर्ययम् ।  
 दृष्ट्वा विमनसो भूवन् वीक्ष्यमाणाः परस्परम् ॥२७॥

एक समय बुधुन्न अपने मन्त्री वर्ग को साथ लेके और धनुर्बाण लेके चत्तर दिशा में शिकार खेलने को गया। राजकुमार बुधुन्न एक सृग के पीछे जाते जाते सुमेरु पर्वत की तलहटी के वन में पहुँच गया, इस ही वन में महादेव जी पार्वती के सहित विहार किया करते थे। उस वन में घुसते ही राजकुमार बुधुन्न की और उस का घोड़ा घोड़ी हांगया उस के सम्पूर्ण साथी भी खी होगये और आश्चर्य से युक्त होके एक दूसरे को देखने लगे। इस पर भी आश्चर्य यह है कि वह राजकुमार एक सहिना खी रहता था और एक सहिना पुरुष रहके राज्य के कार्य करता था। इस राजा के खी शरीर से सन्मान हुई और पुरुष शरीर से भी बड़ा बला, इस ही कथा में लिखा है कि महादेव के शाप से वह वन ऐसा होगया था कि जो पुरुष उस वन में जाय वही खी होजाय, श्री महाभारत जयमस्कन्ध के प्रथम अध्याय ही में लिखा है॥

एकदा गिरिषां द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ।  
 दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तस्समुपागमन् ॥२८॥  
 तान्विलोक्यगम्बिका देवी विवस्त्रा ब्रीडिता भ्रशम् ।  
 भर्तुरङ्गात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥३०॥  
 ऋषयोपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयाः ।  
 निवृत्ताः प्रथयस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ।  
स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद्वेदिति ॥३२॥

इन श्लोकों का अभिप्राय यह है कि एक समय ऋषि लोग महादेव के दर्शनार्थ उक्तवन में गये, उस समय महादेव पार्वती के साथ विहार कर रहे थे, ऋषियों को आता देख कर पार्वती अत्यन्त लज्जित हुई क्योंकि वह वस्त्रहीन थीं, पार्वती ने महादेव की गर्द से उठ कर वस्त्र पहिरा, ऋषि लोग भी महादेव पार्वती के विहारसमय को जान कर वहाँ से लौट आये और नरनारायण के आश्रम को चले गये तब महादेव ने पार्वती को प्रसन्न करनेके निमित्त कहा कि आज से जो कोई इस स्थानमें आवेगा वह स्त्री होजायगा इस भागवत के बनाने वाले लालबुभुक्षु से क ई पूछे कि उस स्थानमें महादेव जी पुरुष क्योंकर रहे ? यदि महादेव जी ऐसा कहते कि " मां विना यः विशेदेतत् " तब कुछ ठीक भी होता है । इस के अतिरिक्त जिन महादेवजी को पुराण वाले सर्वज्ञ मानते हैं उनको यह भी मालूम न हुआ कि ऋषि लोग हमारे दर्शनको आते हैं । हम उनके आनेसे पूर्व ही सावधान होजायें।

राजा सुद्युम्न की असम्भव कथा की समाप्तिइतने ही में नहीं हुई वरन् चन्द्रमा के पुत्र बुध से उस का गान्धर्व विवाह कराया गया और उस के उदर से पुंरुत्र का उत्पत्ति भी हुई और एक पुत्र उत्पन्न हो जाने के बाद स्त्रीरूपी सुद्युम्न ने अपने हतां कतां और विधातारूपी गुरु वशिष्ठ को फिर याद किया याद करते ही वशिष्ठ जी आ मीजूद हुए और सुद्युम्न की दशा को देख कर अत्यन्त दुःखी हुए फिर वशिष्ठ ने महादेव को प्रसन्न करने के निमित्त घोर तप किया, उन के तप से प्रसन्न होके महादेव ने दर्शन देके यह वर दिया कि-

मासं पुमान्स भविता मासं स्त्रीं तत्र गोत्रजः ।

इत्थं च्यवथया कामं सुव्यम्नोवत्तु सेदिनीम् ॥३३॥

सुद्युम्न एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रह करेगा और इच्छापूर्वक पृथ्वी की रक्षा करेगा ॥

आचार्य्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ।

पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दत् स्म त प्रजा ॥३३॥

इस प्रकार से आचार्य की रूपा से सुद्युम्न का पुनरुपत्व प्राप्त हुआ और उस ने पृथ्वी का पालन किया परन्तु प्रजा उस से प्रसन्न न रही, सुद्युम्न के पुनरुप रूप से तीन और स्त्री रूपसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

तस्योत्कल्लो गयो राजन् विमलश्च सुतास्त्रयः ।

दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मतत्पराः ॥ ३४ ॥

उस सुद्युम्न के उत्कल्ल गये और विमल ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । ये तीनों दक्षिण देश के धर्मपरायण राजा हुए ॥

अब पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि इस किस्से से अलिफुलैला के किस्से अछटे हैं वा नहीं, चिकित्सा शास्त्र के प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि स्त्री के शरीर की धातु तथा शिरा और अस्थि आदि पुरुष के शरीर की धातु और शिरा आदि से अत्यन्त भिन्न हैं, प्रत्येक सहीने में उन का बदल जाना सर्वथा असम्भव है ॥

श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध अ० ३ में यह अद्भुत कथा लिखी है ॥

उत्तानवर्हिरानर्त्ता भूरिषेण इति त्रयः ।

शर्यातिरभवन्पुत्रा आनर्त्ताद्वेवतोभवत् ॥ २७ ॥

सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ।

आस्थितोमुङ्कविषयानानर्त्तादीनरिंदम ॥ २८ ॥

तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुविप्रज्येष्ठमुत्तमम् ।

ककुम्भी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९ ॥

पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृत्तम् ।

आवर्त्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम् ॥ ३० ॥

तदन्त आद्यमानस्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ।

तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१ ॥

अहो राजन्निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ।

तत्पुत्रपौत्रनप्तृणां गोत्राणि च न शृणमहे ॥ ३२ ॥



कालोभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ।

तद् गच्छ देवदेवांशो नरदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥

कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भोः ।

भुवो भारवताराय भगवान् भूतभावनः ॥ ३४ ॥

अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकार्त्तनः ।

इत्यादिष्टोऽभिवाद्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥

त्यक्तं पुण्यजनत्रासात् भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ।

सुतां दत्त्वाऽनवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ।

बदर्याख्यं तपो राज तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥

इस सब श्लोकों का अभिप्राय यह है कि राजा शर्याति के उत्तमानग्रही, आनर्त्त और भूरिवेष ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। आनर्त्त का पुत्र रेवत हुआ जिसने समुद्र के क्षीय में कुशस्थली नगरी बसाई और आनर्त्त आदिदेशों का राज्य भोगा। राजा आनर्त्त के १०० पुत्र हुए, इन में ककुद्भी सब से बड़ा था, राजा ककुद्भी अपनी पुत्री रेवती को साथ लेके आदिदेव ब्रह्मा के पास गया, ब्रह्मा की सभा में उस समय गन्धर्व गान कर रहे थे इस कारण राजा ककुद्भी क्षणमात्र ( मौक़ा पाने के वास्ते ) चुप रहे, जब गन्धर्व गावुके तब राजा ककुद्भी ने ब्रह्मा से अपना अभिप्राय कहा ( पूछा कि इस कन्या के योग्य घर बतलाइये ) ब्रह्मा ने हँस कर कहा कि राजन् ! तुमने जिन राज-पुत्रों के साथ अपने हृदय में इस कन्या का विवाह करना विचारा था उनके पुत्र पौत्र और नातियों का तो क्या उनके गोत्रों का भी अब चिह्न नहीं रहा है, जिनकी देर तुम यहां खड़े प्रतीक्षा करते रहे उतने काल में चारों युग २९ वार व्यतीत हो चुके, अब संसार में पृथ्वी का भार उतारने की स्वयं भगवान् ने अवतार लिया है। तुम उन्हीं नररत्न बलराम से इस कन्यारत्न का विवाह कर दो, ब्रह्मा की इस आज्ञा को सुन के राजा ककुद्भी अपने नगर में आये और अपने नगर को गन्धर्वा की भय से तथा स्वजनशून्य जान के त्याग दिया और बलराम के साथ रेवती का विवाह करके आप बदरि-काश्रम तप करने की चला गया ॥

## श्रीमद्भागवत समीक्षा

(अनपरी से आने)

पाठ १ । विचारिते तो मही कि सुखनमानों के वक्षित में जो हूरें रहनी हैं उनका दुष्टारे का दुःख नहीं होता, पान्नु वह वक्षित से ज़मीन पर नहीं आती हैं और न वक्षित में गये जादमी यहां फिर फर आते हैं किन्तु पुराण वालों के वक्षित (ब्रह्मलोक) से राजा ककुत्स्थी अपनी कन्या के वक्षित नीचे आये और देवकी को दुःखाकरया न आई । और यहभी सही परन्तु उस विवाह में उपातिधर्मों ने गोत्रादि का मिलान क्योंकर किया था ? और बलराम से युगों-संझी देवती का विवाह कैसे जाश्रीनाथ के शीघ्रमोथ से हुआ हुआ ? क्या कोई पीराणित पण्डित कह सकता है कि वह विवाह जन्म कुम्हनी के मिलान से हुआ था ? क्या २७ चौकड़ी युग बीतजाने पर भी सब धर्मों की चाल ज्यों की त्यों बनी रही थी ? यदि नहीं तो भारतधर्ममहा-कण्ठ देवती और बलराम के विवाह को धर्मविवाह कह सकता है ?

### नरबलि

हा । ओक ! ! पुराणों ने बलिदान में पशुओंपर ही संतोष नहीं किया अनुषबलि और वह भी पिता के हाथ से पुत्रों का बलिदान ( कटवाना ) यज्ञानः है ॥

राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्र की अया पाठकों को नाटक नाविलों ने ज्ञात हुई होगी, मत्यवीर राजा हरिश्चन्द्र का यश संसार में व्याप्त है, पर तु.भागवत के नवमस्कन्ध अ०७ में लिखा है कि वह सिध्यावादी था, उस हरिश्चन्द्र के जन्तान नहीं पी, उस ने वरुणदेव से प्रार्थना की कि मेरे पुत्र हो ती तेरी भेंट करदूँ । पुत्र रोहिताश्र हुआ, तब वरुण आया कि भेंटकर राजा ने कहा, अभी ( पशु ) मेरे पुत्र का जानकरण नहीं हुआ, नामकरण होनेपर भेंटदूना ॥१० ॥ फिर कड़ा दन्त निकलने पर, तीसरी बार वरुण आया कहा दूध को दांत नहीं टूटे हैं, चौथी बार आया, तब कड़ा सन्नाच पहिर घोड़ा होजाये तब दूंगा । ऐसे ही टोलता रहा, पुत्र ने जब सुना, घर से निकल गया । हरिश्चन्द्र ने अन्य पुरुष से पुरुषमेथ किया । यथा--

तः पुरुषमेथेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ॥ ११ ॥

## अथ दशमस्कन्धसमीक्षा

यह भी अनेक लोगों को विदित नहीं है कि पुराणवाले "ईशानसीह" के सम्मान बिना पितृमातृसंयोग के बलराज की उत्पत्तिनामते हैं, इस नहीं जानते कि ब्रह्मदेव की उत्पत्ति की कथा बायबिल को देख के पढ़ी गई है वा बायबिल के बनानेवाले ने भागवत को देख के ईशानसीह के जन्म की अनन्धव कहानी बनाई है, जो जो परन्तु इस में सन्देह नहीं है कि इस अनन्धव कहानी का कुछभी सिर पैर नहीं है, इस बातको कौनसा समुप्य स्वीकार कर सकता है कि एक स्त्री का गर्भ ( गर्भसंभवनापिण्ड) दूसरी स्त्रीके गर्भमें चलागया ॥ भागवत के दशमस्कन्ध अ० २ में लिखा है—

हृतेषु पटसु वालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥

सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।

गर्भा बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्द्धनः ॥ ५ ॥

भगवानपि विश्वात्मा त्रिदित्वा कंसजं ययम् ।

यदूनां निजनाथानां योगभार्या समादिशात् ॥ ६ ॥

गच्छ देवि ! ब्रजं भद्रं गोपगोभिरलंकृतम् ।

रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले ॥ ७ ॥

अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ।

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ ८ ॥

तत्संनिकृष्य रोहिण्या जठरे संनिवेशय ।

गर्भं संकर्षणात् वै प्राहुः संकर्षणम्युवि ॥

समेति लोकराजाह वलं वलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥

सन्दिष्टेवं भगवता तथेत्यामिति तद्वचः ।

प्रतिपृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाकरोत् ॥ १४ ॥

गर्भं प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।

अहो विश्वंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥

पुनः श्रीकौण्डिन्दा तात्पर्य यह है कि उग्रसेनके पुत्र कस ने जब देवकीके पुत्र भारद्वाजे तब विष्णुका शयनस्थान जिसको अनन्त (शिवनाग) कहते हैं यह सातवें गर्भमें आया, देवकी का वह सातवाँ गर्भ हर्ष और शोक का बढ़ानेवाला हुआ, तब जगद्गुणायक भगवान् ( विष्णु ) ने अपने दास यदु-वशिष्ठोंका कंसके दरसे उवाकुल देखके योगमाया (देवी) को आज्ञा दी कि हे देवी ! तुम खाले और गीलोंसे भरे हुए ब्रजमें जाओ, गोकुलमें बलदेव को खी रोहिणी रहती है, उसके उदर में मेरे निवासस्थान शेष को देवकी के उदर से निकाल के पहुंचा दो ( वा स्थापन कर दो ) \* \* \* २५

अवस्था में जो वह खीय कर दूसरे गर्भ पहुंचाये गये वृष से उन का नाम संकर्षण, लोक में रमण करने से राम और अत्यन्त बलवान् होने से बल-जगत् में प्रसिद्ध होगा । योगमाया देवी भगवान् से ऐसी आज्ञा पाकर और उसे स्वीकार करके पृथ्वी में गई और वैसे ही कार्य किया । योगमाया ने जब देवकी के उदर से गर्भ को निकाल के रोहिणी के उदर में पहुंचा दिया तब शहर के रहने वालों ने श्रीः ॥ गर्भप्राप्त होगया, देखा कहके शोक किया ॥

जब इन में प्रपन्न यह है कि प्रत्येक स्त्री का गर्भाशय नसों से ऐसा ज-कड़ा रहता है कि उस के निकल जाने से कोई स्त्री नहीं बचसक्ती है, यदि गर्भाशय को छोड़कर योगमाया ने देवकी के गर्भ को रोहिणी के गर्भ में पहुंचाया तो उसका पुत्रः संस्थापन क्योंकर हुआ ? यदि गर्भाशय के सहित पहुंचाया तो देवकी क्योंकर जीवित रही, यह धौराणिकों की लीला ईसा-इस्राएलियों की लीला से किसी अंश में कम नहीं है ॥

“अथ एक और अद्भुत कथा हुजिये—बलराम को खी रैवती ने मातृशक्तिने करोड़ वर्षों की थी, लिखते हुंकी आती है कि जब बलदेव के पड़-दादा का भी जन्म जहाँ था, तब रैवती ब्रह्मा की खभा में बैठीहुके गर्भवादी के गीत सुन रही थी ॥” ( यह लेख नवम स्कन्ध समीक्षा का है )

१—सत्याधर्मकाश में स्वामीजी ने पूतनावध का संखन कियाही है कि उस का शरीर कौनों के सुनों का नाश कर गिरा ॥

२—मही खाने समय श्रीकृष्ण ने माता को तीन लोक मुख में दिखा दिये । अ० ८ में लिखा है ॥

३—अ० १९ अभिन का प्राशन ( खाना ) असंभव है ॥

४—अ० २२ में गोपी बलहरण आया है ॥



एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश द्वाऽवलाः ।

अजीजनन् नवजात् पितुः सर्वात्मसम्पदा ॥ १ ॥

यत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गवाण-

स्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शैकुः ॥

१६ सहस्र गोपीयण से मध्येक में १० सन्तान हों तो एक लाख वाट झार पुत्र हुवे । यहाँ हरिवंश से विरोध होता है, वहाँ एकलक्ष ही लिखा है ॥

( द्यूत ) जुआ

अ० ६१ में श्लोक २५ से ३७ तक बलदेव जी की द्यूत क्रिया का वर्णन है । यहाँ लिखा है "दक्षीदीव्यन्ति राजानः" इत्यादि ॥

मद्यपान

अ० ६५ में बलदेव जी घन्दावन भाये हैं, वहाँ दो मास ठहरे ।

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ।

आप्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥

वन में जीठी मद्य की गन्ध लेते २ स्त्रियों सहित मद्य पिया ॥

समीक्षा-श्रीकृष्णचन्द्र को १६ सहस्र राशियों से कामक्रीड़ा करना । लदाज जी को मद्यप और उवारी बताना अनर्थ है । भीमासुर की जीती ६००० राजदन्व्योश्रीं से विवाह करना अ० ५९ में स्पष्ट लिखा है ॥

अथ एकादशस्कन्धसमीक्षा

श्री कृष्ण की कुलप्रता दोष-

संहर्षुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥ अ० १

अर्थात् स्वकुल संहार करने की कृष्ण ने इच्छा की ॥

अ० २ प्रियव्रत के प्रपौत्र ऋषभदेव को वेदपारग ईश्वरावतार लिखा है

स्कन्ध ५ अ० ३ में इन्हें जैनमतप्रवर्तक लिखा है । देखो भाषा टीका मन्त्रों का छापा श्री बेंकटेश्वर प्रेस ॥

अ० ५ कलियुग की सहिष्णुता लिख कर यहाँ तक लिखा है । यथा-

कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति खम्बजेषु ।

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥

खत्ययुग के लोग इस कल्पियुग में जन्म चाहते हैं, क्योंकि कल्पियुग नारायणपरायण होने । द्रविड देश में ताप (घाँ) नदी के पान के लोग को के तटके जलपानकरते हैं, ये प्रायः भक्त होते, कि सुदाई क्यों? अ० ईशो क० में शकल्य की आयु कुल १२५ वर्ष की बताई है । यदि ह्यापर में होते तो १ की होती । अ० ३० यादव शरोरत्यागापं प्र । नियम पूजन काने को खले " यदुद्धा गधुद्विपः " बूढ़े यादव शराब को घुरा जानते थे । यह श्लोक १० में है परन्तु १२ वें श्लोक में नदीपान का उल्लेख है । यथा-

ततस्तस्मिन्प्रहापानं पपुर्नैरेकं जघु ।

दिष्टविभ्रंशितधियो यद्भ्रजैर्भृशयते वसिः ॥ १२ ॥

वन में जाय लुहि सट्ट हुई, खूब शराब पीकर ॥ । परन्तु यह ठीक नहीं है कि जो खंसार के लड़कर व धर्मके प्रसारार्थ जन्म लें, बड़ो अपने का ही नाश कराने की अधमसे ये न रोकें बल्कि प्रवृत्त करें । यथा-

कृष्णमायाविमूढानां खंघर्षः सुसहानभूत् ॥ १३ ॥

कृष्ण की माया से खूब ही खूब शकल्य बने, लड़ाई हुई ।

### अथ द्वादशास्कन्धसमीक्षा

अ० १ में भविष्यत् कथा कहते हुये श्लोक २८ में से कहा है:-

ततोऽष्टौ यथना भावमांश्चतुर्दश च पुङ्गवाः ।

भूतो दश मुहंडाश्चमीना एकादशैव तु ॥ २८ ॥

८ गीही राजा-सुसहान, १४ पुङ्गव पुङ्गव, 'पर १० कुल मुहण्डों के ११ मीनों के राज्य करेंगे ॥

समीक्षा-यदि यवन शब्द का सुसहान-पार्थ करें तो उनकी ८ द्वादश वतें भारत में हुई या नहीं इस पर विवाद नहीं परन्तु सुसहानों के व १४ पुङ्गवों को द्वादशाहत कौम ही हुई ।

अथ अथर्ववेद के अष्टादश ब्राह्मणों का वर्णन नहीं। सुकनानक का नाम अथर्ववेद के अष्टादश ब्राह्मणों का नाम है परन्तु भागवत में कहीं भी न हाहा कि वह अथर्ववेद के अष्टादश ब्राह्मणों का नाम है परन्तु अथर्ववेद में ही है। अ० २ में—

त्रिंशद्विंशतिवर्षीणि परब्राह्मणः कृती नृणाम् ॥ ११ ॥

२०। ३० वर्ष की अवस्था में ब्राह्मणों की होनी यहाँ हम यह भी बताना चाहते हैं कि ब्राह्मणों की आयु १०० वर्ष की वेदविहित है, योंही सुमेरु के १०० वर्ष की आयु होना है, तब यह होशकता है कि यौन संरक्षण से ब्रह्मणों के सुमेरु के बड़ा भले, अथर्ववेद आदि से घटा नहीं। श्री कृष्णार्जुनकी आयु भी एकत्र जलान्य २०६ में १२५ वर्ष की ही लिखी है ॥

यदुर्वशीऽवतोरणस्य भगवतः पुरुषोत्तम ! ।

शरच्चतुर्दशवर्षीण्युविंशाधिकं प्रथी ॥ २५ ॥

नाऽधुना तेषुस्त्रिंशत्वार ! देवज्ञानार्थोपितम् ।

कुलं च विप्रशापेक्षान नष्टमात्मभूदिदम् ॥ २६ ॥

कृष्ण से प्रज्ञा के कहे कि आपकी यदुकुल में १२५ वर्ष बीत, अथर्व की देवकार्य काही नहीं रहा। यह पंच भः नष्टाय होगया ॥

अथ अथर्ववेद, जेता, हाथर में लक्ष, अथर्ववेद और १ हजार वर्षकी आयु बताना उदधे है, रामायणकी भी बतानी ही आयु हुई है। कहे २ वर्ष शब्द का अर्थ दिन भी जियर जाता है क्योंकि वाल्मीकीय रामायण में जब राम चन्द्र के पास आनाग करे पुत्र की लाया है तब "पञ्चवर्षमहत्कम्" अर्थात् ५०:० वर्ष की आयु बताने है, टीका में लिखा है कि—“वर्षशब्दोऽत्र दिनपरः” अर्थात् यहाँ दिन का वाचक वर्ष शब्द है “किञ्चिन्मूः चतुर्विंशत्यर्थः” कुछ कम १५ वर्ष वर्ष दिया है। इसी से सिद्ध है कि किसी समय १०० वर्ष से अधिक आयु नहीं होती थी।

पुराणों की प्राचीन होने में स्वयं पीराणिकों की भी विश्वास नहीं है क्योंकि एक अंगरानी पण्डित ने अपनी पुस्तक में लिखा है की श्रीमद्भागवत कोपदेश की बताने है। यथा—



श्रीमद्भागवतस्यानुक्रमणी रचयिता ।

विदुषा वीपदेवेन भिषङ्केशवसूनुना ॥

हरिलोला नामक पुस्तक में भी लिखा है ॥

श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायार्थादि निरूपयते ।

विदुषा वीपदेवेन मन्त्रिहेमाद्रितुष्टये ॥

ज्ञानेश्वर मिश्र ने जो गीता की टीका बनाई है उसमें उन्होंने ने १२७. शकाब्द में हेमाद्रि का होना सिद्ध किया है और वीपदेव हेमाद्रि के ही समय में हुये थे इस से भागवत की प्रत्यक्ष नवीनता सिद्ध होती है, भागवत के चूर्णिका टीका में उन श्लोकों को उद्धृत किया है जिस से भागवत की प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है ॥

भविष्यपुराण प्रति सर्ग पर्यं ३ अ० ३२ में वीपदेव कृत भागवत ही लिखा है जो वेदप्रकाश फरवरी सन् १८५० में हमने छापा है ॥

पुराणों की सम्पूर्णा असम्भव और असत्य कहानी लिखी जायत। एक बड़ा भारी पुस्तक बनजाय इस के अतिरिक्त इन के परस्परविरोध दिखाने को भी एक स्वतन्त्र पुस्तक रचने की आवश्यकता है ॥

देवीभागवत अ० १ स्कन्ध १ में लिखा है:-

विविधानि पुराणानि शास्त्राणि त्रिविधानि च ।

वितपट्ठाच्छलयुक्तानि मिथ्याऽनर्घकराणि च ॥ २८ ॥

सब पुराण और विविध शास्त्र छल वितपट्टासे भरे हैं । इसने शास्त्र पर भी छल भोंक दी है क्योंकि स्वयं पुराण ही ना ?

पाठकवरा । जो कुछ मैंने इस पुस्तक में लिखा है सब अपने हृदय की शङ्करूप से लिखा है, किसी का चिन्त दुःखाने के लिये नहीं । ईश्वर के लिये और भावको दूर करे, हमें शान्ति दे, यही हमारी प्रार्थना है । आप लोग इस के गुण ग्रहण कर देवों पर श्रद्धा करेंगे, तभी और काम-सफल हो-

शक्तिमान्  
दुहनलाले स्वामी

लने । अध्याय ८ में परीक्षित ने ब्रह्मा का कमल से उत्पन्न होना, ब्रह्मा, माया आदि और अवतारकथा, युगों के धर्म, वेद, उपवेद, इतिहास पुराणों का धर्म झूठा है । अध्याय ९ में श्रीशुकदेव जी ने उत्तर दिया है । अ० ८ के ही अन्त में निम्न श्लोक हैं ॥

सूतउवाच-

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।

ब्रह्मणे भगवत्प्रेक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २८ ॥

यद्वत्परीक्षिदुषभः पाण्डूनामनुपृच्छति । \*

खानुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ २९ ॥

अर्थात् वेदसम्मित-पुराण भागवत शुकदेव जी सुनाने लगे, और जो र ने प्रश्न किये उन का समाधान करते रहे । और ४ श्लोक की भागवत प्रसिद्ध है, वह यहीं वर्णित है । यथा:-

अहमेवासमेवाग्रे नान्यदत्सदसत्परम् ।

पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽश्म्यहम् ॥ ३१ ॥

ऋतेर्धं यत्प्रसीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।

तद्विदादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः ॥ ३३ ॥

यथा महान्ति भूतानि भूतेषु च्चावचेष्वनु ।

प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ३४ ॥

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥ ३५ ॥

ब्रह्मा के प्रति भगवान् की उक्ति है ॥

अ० १० में सृष्टि की उत्पत्ति, अनेक योनियों का प्रादुर्भाव मनुस्मृति के अ० अष्ट से वर्णित है । नाभि, कमल और ब्रह्मा की उत्पत्तिका वर्णन है । उस से सिद्ध है कि यह पुराकालीन बात नहीं है कि नाभिकमल से, ब्रह्मा से मनुस्मृति का पृथिवीतल और सब योनियों की उत्पत्ति हुई । वह रूप है कि:-

श्लोक २९ में परीक्षित शब्द का हलन्त होना चिन्त्य है ॥

प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् ।

सिद्धचारणगन्धर्वांन्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३७॥

शौनक ने श्लोक ४८ में प्रश्न किया कि हे सूत जी ! विदुर सैत्रेय का संवाद कहिये, जो तीर्थयात्रा में हुआ था ॥

इस पर सूत जी ने कहा कि राजा परीक्षित ने भी शुकदेव जी से प्रश्न किया था । जो वृत्तशुकने परीक्षित को सुनाया, वह तुम भी सुनी । इस ने बिनकुल ही स्पष्ट है कि यहाँ वह भागवत नहीं है कि जो शुकदेव द्वारा राजा ने सुनी थी । यह तो शौनक के, जो जीमें आता है, वह सुनते हैं और सूत जी उसका उत्तर देते समय अपनी याददास्त सुनाते हैं, जो शुक परीक्षित संवाद में याद आजाता है उसे भी सुना देते हैं ॥

इति द्वितीयस्कन्धसमीक्षा



